TIGHT BINGING BOOK

UNIVERSAL
LIBRARY
OU_182645
UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H 81.08 Accession No. P.G.H 2209

Author A31-

Title आकाशवाणी काव्य-संगम

This book should be returned on or before the date last marked below.

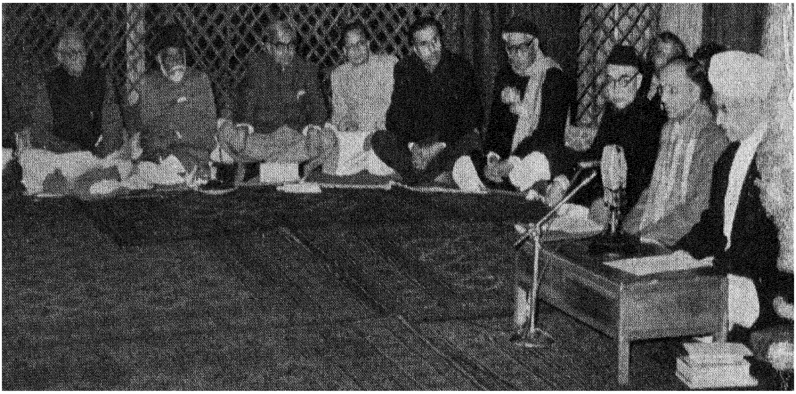

द्वितीय आकाशवाणी सर्वभाषा-कवि सम्मेलन में भाग लेने वाले कवि

आकाशवाणी

काव्य-संगम

२

पब्लिकेशन्स डिवीजन
सूचना और प्रसार मंत्रालय
ओल्ड सेक्रेटेरिएट, दिल्ली-८

Sarvodaya Sahitya Mandir,
Kothi (Bus Stand) Hyderabad-(**A.P.**)

अक्तूबर १९५७
(आश्विन १८७९)

मूल्य
एक रुपया

मुद्रक
एलबियन प्रेस, कश्मीरी गेट, दिल्ली

अनुक्रम

आमुख ३

हमारे देश की संस्कृति एक है डा० बालकृष्ण केसकर ७

सभी महान कविता की कोर में प्रकाश है श्री सर्वपल्ली राधाकृष्णन ९

ंस्कृत ११

कालिदास: रघुवंश, सर्ग १३

रूपान्तरकार: श्री जानकीवल्लभ शास्त्री

समिया १४

श्री अंबिकागिरि राय चौधुरी

रूपान्तरकार: श्री भवानी प्रसाद मिश्र

ड़िया १८

श्री सच्चिदानंद राउतराय

रूपान्तरकार: श्री उदयशंकर भट्ट

उर्दू २३

श्री जिगर मुरादाबादी

रूपांतरकार: श्री ओंकारनाथ श्रीवास्तव

कन्नड़ २७

श्री विनायक कृष्ण गोकक

रूपान्तरकार: श्री नरेन्द्र शर्मा

श्मीरी ३१

श्री दीनानाथ कौल 'नादिम'

रूपान्तरकार: डा० हरिवंशराय बच्चन

जराती ३६

श्री सुन्दरम्

रूपान्तकार: श्री भगवतीचरण वर्मा

तमिल ३६
योगी शुद्धानंद भारती
रूपान्तरकार: श्री इलाचन्द्र जोशी

तेलुगु ४५
श्री जी० जाषुआ
रूपान्तरकार: श्री हंसकुमार तिवारी

पंजाबी ४६
श्री मोहन सिंह
रूपान्तरकार: श्री हरिकृष्ण प्रेमी

बंगला ५३
श्री प्रेमेन्द्र मित्र
रूपान्तरकार: श्री भवानी प्रसाद मिश्र

मराठी ५८
श्री बी० बी० बोरकर
रूपान्तरकार: श्री गिरिजाकुमार माथुर

मलयालम ६३
श्री जी० शंकर कुरुप्प
रूपान्तरकार: डा० हरिवंशराय बच्चन

हिन्दी ६६
श्री बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'
श्री सुमित्रानंदन पंत
श्री भगवतीचरण वर्मा
डा० हरिवंशराय बच्चन

आमुख

यह दूसरा अवसर था जब कि आकाशवाणी की ओर से एक अखिल-भारतीय कविसभा का आयोजन हुआ और हमारी राजधानी में, गणतंत्र दिवस के उपलक्ष्य में, २५ जनवरी, १९५७ को भारत की सभी प्रमुख भाषाओं के प्रतिनिधि कविगण, एक मंच पर पधारे। यह कविसभा हमारी नई आज़ादी, हमारे देश की विशालता और एकता और हमारी नई उमंगों की प्रतीक थी।

इस समारोह में हमारे कवियों ने हमारी साधारण जनता का अपनी कविताओं में अभिनन्दन किया और भारत की राजभाषा हिन्दी ने, देश की विभिन्न भाषाओं की कविताओं के सुन्दर अनुवाद प्रस्तुत करके, इन अन्य भाषाओं का अभिनन्दन किया।

इस अवसर पर पढ़ी गई कविताओं की विविधता विशेष रूप से दर्शनीय थी। प्रस्तुत संकलन में पाठकों को विशाल भारत देश की रंगारंग प्रकृति और और बहुविध जीवन का सूक्ष्म परिचय मिलेगा। साथ ही उन्हें उस अंतर्धारा का संसर्ग भी प्राप्त होगा जो आज भारतीय कवि के मानस में प्रवाहित हो रही है। पाठक इन कविताओं में देखेंगे कि आज का भारतीय कवि प्रकृति की चुनौती को स्वीकार करने वाले कर्मठ मानव का अभिनंदन कर रहा है। आज वह 'विशेष' का मोह छोड़ कर 'साधारण' को अपने हृदय, तथा सामाजिक स्तर पर भी, आदरणीय स्थान दिलाने के लिए प्रयत्नशील है। उसके आगामी समाज के स्वप्न भी इसी रंग में ढले हैं। वस्तुतः यह प्रवृत्ति भारतीय साहित्य की चिरंतन जनवादी परंपरा का ही रूपांतर है।

एक ज़माना था कि भारतवर्ष के राजदरबारों में कवि और शायर अपनी कविताएँ राजाओं के अभिनन्दन के लिए अर्पित करते थे और राज-समादर प्राप्त करते थे। आज के कवि अपनी कृतियाँ देश की कोटि-कोटि जनता के

प्रति अर्पित करते हैं और जनता का यह कर्तव्य हो जाता है कि सरस्वती के इन वरद पुत्रों का वह हृदय से अभिनन्दन करे क्योंकि इन के स्वरों में हमारे नए देश की उमंगों की वाणी है।

समारोह के अवसर पर उर्दू कविता का पद्यानुवाद नहीं प्रस्तुत हुआ था; पाठकों की सुविधा के लिए अब गद्य में अनुवाद जोड़ दिया गया है। तमिल कविता के पद्यानुवाद का सुधारा हुआ रूप प्रस्तुत है।

सूचना और प्रसार-मंत्री डा० बालकृष्ण केसकर

हमारे देश की संस्कृति एक है

डाक्टर केसकर का स्वागत-भाषण

बड़े हर्ष का विषय है कि आल इण्डिया रेडियो दूसरी बार सर्वभाषा सम्मेलन अखिल भारतीय रूप में आपके सामने प्रस्तुत कर रहा है। पहली बार, पिछले साल, यह कल्पना हमने मूर्तस्वरूप में लाने की कोशिश की कि गणतंत्र दिवस के अवसर पर भारतवर्ष की सब भाषाओं के कवियों को एक मंच पर लाकर, एक प्लेटफार्म पर खड़ा कर, हमारे देश की संस्कृति एक है और एक दूसरे से मिली हुई है, यह दिखलाने की कोशिश करें। तो साहित्य का जो यह समन्वय है, कविता का जो यह अखिल भारतीय समन्वय है, उसे प्रत्यक्ष रूप में सामने रखने की कोशिश की। उसको अपूर्व सफलता मिली, और उससे प्रोत्साहित होकर, इस साल हम इसको और संगठित तौर पर श्रोताओं के सामने उपस्थित कर रहे हैं।

पारसाल हमारे प्रधान मंत्री जवाहरलाल जी ने इसका उद्घाटन किया और इस सम्बन्ध में अपनी दिलचस्पी ज़ाहिर की। मुझे बहुत खुशी है कि इस साल हमारे उप-राष्ट्रपति डाक्टर राधाकृष्णन् उद्घाटन के लिए यहाँ आज हमारे सामने उपस्थित हैं। उनका साहित्य-प्रेम, उनकी विद्वत्ता सर्व-परिचित है और उसके बारे में मैं कुछ कहना नहीं चाहता। मैं उनसे प्रार्थना करूँगा कि आज के समारोह का वह उद्घाटन करें।

सभी महान कविता की कोर में प्रकाश है

उपराष्ट्रपति श्री सर्वपल्लि राधाकृष्णन् का उद्घाटन-भाषण

मुझे प्रसन्नता है कि मैं यहाँ इस कविसभा का उद्घाटन करने के लिए आया हूँ। हमारा गणतंत्र-दिवस एक सांस्कृतिक महोत्सव का रूप भी धारण करता जा रहा है और आज यहाँ हमारे सम्मुख देश की विभिन्न भाषाओं के प्रतिनिधि कवि विद्यमान हैं, जो अपने काव्य-पाठ द्वारा हमें एक दूसरे को समझने में सहायता प्रदान करेंगे और इस प्रकार देश के सांस्कृतिक संघटन में अपना योगदान देंगे।

सभी महान कविता की कोर में प्रकाश है। तथ्यों की नीरस गणना या अनुभव के वर्णन मात्र से कोई भी काव्य सचमुच महान नहीं हो सकता। कवि को अपने अनुभव में गहरे पैठना होगा, उसके महत्व को समझना होगा। व्यक्ति पर जो घटित होता है उसके द्वारा नहीं, बल्कि उसके प्रति वह जो कुछ करता है उसके द्वारा वह सच्चा कवि बनता है।

कवि किसी भी विषय पर महान काव्य की रचना कर सकता है। हमारे पूर्वजों ने कहा है कि यह संसार तिक्त भी है और मधुर भी—

क्वचिद्वीणावाद्यं क्वचिदपि च हाहेति रुदितम्
क्वचिन्नारी रम्या क्वचिदपि जरा जर्जरवपुः
क्वचिद्विद्वद्गोष्ठी क्वचिदपि सुरामत्तकलहो
न जाने संसारः किममृतमयः किं विषमयः

इस संसार में एक ओर वीणा-वादन है तो दूसरी ओर हाहाकार और रुदन है, एक ओर सुन्दरी नारियाँ हैं तो दूसरी ओर जरा-जर्जर प्राणी हैं, एक ओर विद्वज्जन की गोष्ठियाँ हैं तो दूसरी ओर बेसुध मद्यप हैं, इसके मधुर और तिक्त दोनों पक्ष हैं, कवि इनमें से किसी को लेकर ऐसे रूप में ढाल सकता है कि वह हमारे मर्म को छू सके।

काव्य का उद्देश्य सूचना मात्र देना नहीं है। उसे जीवन की किरणें विकीर्ण करनी चाहिए। यह तभी हो सकता है जब कवि अपने काम को हल्के ढंग से न ले, उसका निरीक्षण बहिरंग तक सीमित न हो और उसका विश्लेषण मात्र बौद्धिक न हो बल्कि वह अपने विषय के अंतरतम में प्रवेश कर सके। विचारों की पवित्रता, मानस की शुद्धता और अनुभूति की गहनता महान काव्य के लिए आवश्यक हैं। आदेशों द्वारा ये गुण उत्पन्न नहीं किए जा सकते। व्यक्ति को स्वयं ही प्रेरणा का अनुभव हो, यह आवश्यक है। तभी हमें महान काव्य की उपलब्धि हो सकती है। और मैं आशा करता हूँ कि आज जो लोग काव्य-रचना कर रहे हैं, वे अपने कार्य के गौरव को तथा जिस आदर्श के प्रति उन्होंने अपने को अर्पित किया है उसकी पवित्रता को पहचानेंगे।

आज जो कविताएँ हमारे सम्मुख पढ़ी जाएँगी उन्हें सुनने में मुझे बहुत प्रसन्नता होगी।

★

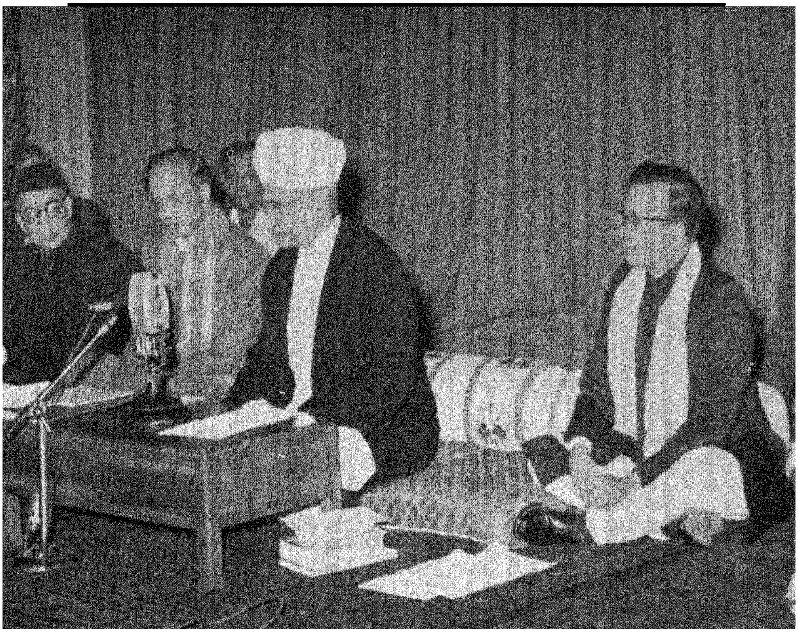

उप-राष्ट्रपति डा० राधाकृष्णन् तथा आकाशवाणी के महानिदेशक श्री जगदीशचंद्र माथुर

संगम-वर्णन

क्वचित्प्रभालेपिभिरिन्द्रनीलै-
मुक्तामयी यष्टिरिवानुविद्धा ।
अन्यत्र माला सितपंकजाना-
मिन्दीवरैरुत्खचितान्तरेव ॥५४॥

क्वचित् खगानां प्रियमानसानां
कादम्बसंसर्गवतीव पंक्तिः ।
अन्यत्र कालागुरुदत्तपत्रा
भक्तिर्भुवश्चन्दनकल्पितेव ॥५५॥

क्वचित्प्रभा चान्द्रमसी तमोभि-
श्छायाविलीनैः शबलीकृतेव ।
अन्यत्र शुभ्रा शरदभ्रलेखा
रन्ध्रेष्विवालक्ष्यनभः प्रदेशा ॥५६॥

क्वचिच्च कृष्णोरगभूषणेव
भस्मांगरागा तनुरीश्वरस्य ।
पश्यानवद्यांगि विभाति गंगा
भिन्नप्रवाहा यमुनातरंगैः ॥५७॥

[कालिदास : रघुवंश, सर्ग १३

पूर्वाभास

: १ :

गोरी गंगा संग सांवली यमुना के।
दो रंगों की तरल तरंगें
दो छोरों से उठती, बढ़ती मिल जाती हैं।
ऐसा दिखता :
वर्षों की बिछड़ी दो बहनें...
श्याम गौर...
संदली कपूरी, क्वांरी कुहरी,
क्वार दुपहरी और झांवरी सांझ सावनी...
...श्याम गौर बाँहें उछाल कर,
गले गले मिल,
लिपट रही हों।
सिमट रही हों आपस की गोदों में।
उन्मन मन, बेसुध विभोर तन...
खोती जाती हों अपना अस्तित्व पुरातन।
भेद मिटाती जाती हों काले गोरे रंगों का।
दुई दुरा कर,
जोड़-जोड़ उज्ज्वल श्यामल लहरों को...
निर्मल एक अगाध इकाई सी हों बनती जाती।

: २ :

गोरी गंगा काली कालिन्दी का संगम।
पर समरस होने के पहले
दोनों लहरें रूप रंग रस धार
सिरजतीं कितने दृश्य सुहाने।
...कहीं दीखता झलमल झलमल
आबदार मोती का ऐसा हार
कि जिसमें चमचम नीलम के टुकड़े हों गए पिरोए।
और कहीं......
कुछ उजले औ' कुछ नीले फूल कमल के...
गूंथ गूंथ जा रही बनाई हो जैसे वरमाला।

कहीं······साँवले उजले हंसों की दुहरी सी पाँत
उड़ चली हो ज्यों फड़का पंख ।
कहीं पर...उजले चंदन से चीती धरती पर जैसे...
फूल...पत्तियों की नक़्क़ाशी की जाती हो श्याम अगर से ।
और कहीं पर...
किसी झाड़ के झुरमुट से छन कर आती...
दूधिया चाँदनी पर पड़ती हो
परछाईं ज्यों तने डाल टहनी फुनगी की ।
और कहीं पर...
धुनी रुई के फाहों जैसे हल्के फुल्के,
शरद बिरद से उजले उजले
बादल दल के बीच बीच से
झाँक रहा ज्यों नील गगन हो ।
और वहाँ क्या छटा मनोरम ।
जैसे भस्म रमाए शिव का
स्फटिक रजत हिम-सा उज्ज्वल तन
जिसमें काले काले विषधर
सोह रहे हों बन आभूषण !
मोह रहे हों रज-रज को ज्यों
एक तत्व बन कर सत् औ' तम ।

रूपान्तरकार :
श्री जानकीवल्लभ शास्त्री

जन्म, सन् १९१६, मैगरा, बिहार । रचनाएँ : काकली (संस्कृत में) । प्रसिद्ध कवि और आलोचक । संस्कृत में आप 'ललित-ललाम' नाम से लिखते हैं । मुज़फ़्फ़रपुर के रामदयाल सिंह कालिज में प्राध्यापक ।

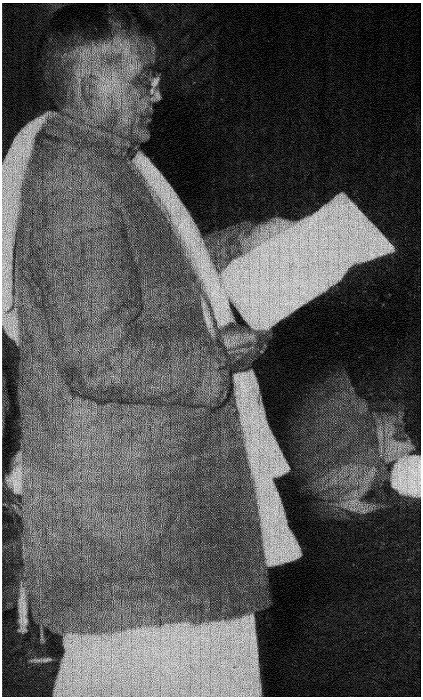

कवि :
श्री अंबिकागिरि राय चौधुरी

रूपांतरकार :
श्री भवानीप्रसाद मिश्र

लोकप्रिय राष्ट्रीय कवि। रचनाएँ : वीणा, तुमि, सांग्स ऑफ़ दी सेल, (कविता-संग्रह)। असम साहित्य सभा के संस्थापक और असम जातीय महासभा के मुख्य मन्त्री। सम्पादक, डेका असम। गुआहाटी (असम)।

एये मोर मनोरम असमी असम

पूत भारतर चिर उन्नत गौरव मुकुटर . . .
जेउती, चराइ रूप गरिमारे दीप्तिमान उज्ज्वल,
रस रंगियाल सपोत पुरीर कहिनुर जलमल
गाओ शुना गीत चिर सेउजीया मनोरम असमर ।

यत नितौ पुवाते पाटकाये दिये उषार दुवार खुलि,
शारी पाति थका पर्वत चूड़ा चिकमिक उठे ज्वलि,
अरुण कोंवरे थुपि थुपि दिये सोणर चंपा कलि
प्रवेश पथर अरिहणा सेया भारत सोमालों बुलि. . .

यत लास्य अधीरा निजरार सुरे श्यामली मुखर करे,
थमकि थमकि मधु लय लासे भैयामर फाले लरे,
पर्वत मैयाम एकाकार करि माधुरी मुक्त सोंते,
महामिलनर गाइ प्रीति गीति सार्दार सावति धरे
सुदूर बिचारी बय मुकुलित उद्दाम खरतरे
असीम अपार निखिलर हिया सामरार उलाहते ।

यत आकाशर मेघे निमिषे निमिषे सलाय अयुत रं
शिपीनी हातेरे टुकि टुकि आनि प्रकृति आत्महारा–
बटा तुलि तुलि ऋतुवे ऋतुवे बोलाय मेखेला खन
रमक जमक पखिला–फुलर रूपेरे उपाछि परा ।

यत ग्रीष्मर रदे डेवा-पौरा दुख बारिषात जाय उटि,
बाणर प्रकोप महा पथारत सारूवा पलस परि
आहिनत हांहे मलयात नाचे जीयाइ थकार गीति
पुहर कुवँलि विषादर दिन भोगालीत जाय उरि ।
ओरेओ बछर एइदरे यत जीवन पूजार आरति,
सेयेंड असम मोर मनोरम भारत मातार किरीति ।

असम मेरा देश, मेरा प्राण

असम मेरा देश, मेरा प्राण,
गा रहा हूँ, सुनो, उसका गान।

पुण्य भारत के समुन्नत भाल का टीका,
रूप है प्रत्येक जिसके सामने फीका,
दीप्ति-उज्ज्वल स्वर्ण नगरी का प्रभामय पुंज,
झलमलाते रंग-रस-आनन्द सुख का कुंज,

असम मेरा देश, मेरा प्राण,
गा रहा हूँ, सुनो उसका गान।

जहाँ पटकुइ नित्य द्वारे उषा के खोले,
जहाँ पर्वत श्रेणियों पर सूर्य रँग घोले,
अरुण चंपा की कली पर स्वर्ण बिखराता,
कर चुकाये बिना भारत का, नहीं आता,

असम मेरा देश, मेरा प्राण,
गा रहा हूँ, सुनो, उसका गान।

जहाँ लास्य अधीर निर्झर स्वरों की धारा,
कर रही है गुंजरित आकाश-पथ सारा,
जहाँ रुकते ही नहीं बढ़ते हुये सोते,
जहाँ एकाकार पर्वत-वन-भुवन होते,

असम मेरा देश, मेरा प्राण
गा रहा हूँ, सुनो, उसका गान।

जहाँ सरिता, प्रीत के गाते हुये सौ गीत,
सिंधु से अभिसार की साधे हुए है रीत,
जहाँ स्नेहिल लहर छूती है अखिल के छोर,
जहाँ आशा से भरे हैं पल, प्रहर, निशि-भोर,

असम मेरा देश, मेरा प्राण,
गा रहा हूँ, सुनो, उसका गान।

जहाँ बादल दल बदलते हैं हज़ारों रंग,
प्रकृति परिवर्तित जहाँ पर मौसमों के संग,
जहाँ सपनों की सरलता से सुमन खिलते,
तितलियों के वर्ण सुमनों से जहाँ मिलते,

असम मेरा देश, मेरा प्राण,
गा रहा हूँ, सुनो, उसका गान।

जहाँ वर्षा ग्रीष्म को धोकर बहा देती,
जहाँ धरती धान से नज़रें नहा देती,
जहाँ फ़सलें, शरद्-नभ-भर गीत गाती हैं,
ज़ीस्त की घड़ियाँ मरण पर जीत जाती हैं,

असम मेरा देश, मेरा प्राण,
गा रहा हूँ, सुनो, उसका गान।

श्री भवानी प्रसाद मिश्र

जन्म, सन् १९१४, नरसिंहपुर (मध्य प्रदेश)। नई हिंदी कविता के प्रमुख कवि। प्रकाशित कविता-संग्रहः गीत फ़रोश। आकाशवाणी के बम्बई-केन्द्र से सम्बद्ध।

कवि :

श्री सच्चिदानंद राउतराय

रूपांतरकार :

श्री उदयशंकर भट्ट

प्रमुख कवि। रचनाएँ : पाण्डुलिपि, तथा पल्लिश्री। आजकल, केशवराम काटन मिल्स, कलकत्ता में प्रमुख अधिकारी। ४२, गार्डेन रीच रोड, कलकत्ता।

दिगंत

[१९५० जानुआरी ता० २६ रे लेखक सामान्य पीड़ित थिआ अबस्थारे लिखित]

डाक्टर ! मुक्ति दिअ। बाहारे जिबाकु दिअ
छबिश सकाले,
मोर एइ रुग्ण देह, क्लान्त मन, असुस्थ कंकाले
टाणि टाणि अजस्र कौतुके

जनतार जुलुसरे, रास्तार चउके
सामिल हेवाकु चाहें ।
छुटि फुटपाथे
आजि तुंग सकालर झंडा नेइ हाते
बुलिवाकु दउड़ि, भीषण
इच्छा हुए । इच्छा हुए रोग पुरातन
फिंगि देइ दूरे
नूतन, सबुजु साप फिंगि तार जीर्ण खोलपारे
सबुज दुधरे धुआ चक् चक् तरवाल देहे
खेलिबुले जिमिति से खोला जमि, प्रान्तरे, आलुए,
सेइपरि इच्छा मोर जीवनर नूआ विद्युतरे
चमकि, झलसि उठि जनतार आकाशर नीले
जलिबाकु क्षण पाईं, तापरे मुं चित्रपतगम
परि बा हावारे उड़ि ढ़िला करि देह भारक्रम
उज़िजान्ति भासि भासि आकाशर नैलिरे पहँरि
बड़ इच्छा, एका, एका संगै केही न थान्ता प्रहरी ।
बिछणारे शोइ शोइ मन हुए गंगार इजिसि
परि मुं सफेत् जले झाम्प मारि जाआन्ति कि मिशि
तीर्यक ड़ेणारे चिरि पातालार अतल पाहाच
प्रवालर गृहे नाचि नेलि नाली हररंगी माछ
सांगरे, आसन्ति फेरि, ढेउ भागि पाणिर सिड़िरे
मोर एइ रोगशय्या रूपे रसे भरि क्षणकरे ।
एसिआर एक प्रान्तुं अन्य प्रान्ते जागे जे जीबन
(एइ नूतन आशर मानचित्र, एइ जे उत्तरण)
मैसुर चंदनवनुं कामिरर् तुषार अरण्य
सिन्धुर निर्जन मरुचारी केउं त्रस्त काराभ्यान
दृष्टिरे नवीन एक दिगन्तर जागे जे संधान
पामिरर् मालभूइं, मालयर रबर जंगले
चीनीर हलदी खेते असरन्ति आशार फसले

नूतन दृष्टिर जेउं इन्द्रधनु सप्तरंगे खेले
तारइ आश्चर्य विभा आजि मोर रोगशय्या घेरि
एसिआर चारिदिगुं झरिपड़े, दिग्बलय चिरि ।
(फालगुनर बतासरे झुरु झुरु फुलगंध परि ।)
धबिश सकाल आसे । स्पर्श तार गंधमृग मने
नूतन सुरभि आणे, काहिं एक रोगीर शयने ।
निभिजाए मरीचिका, मरुभूर मारीच सभ्यता,
पखोर जाहाज जाए । आकाशरे (भेला भेला) चढ़ेइंक छता ।
मरुजात्री काराभ्यान दृष्टिपथे नूतन दिगन्त......।
उषार चेहेरा आजि एक नूतन पथर चित्रपट ।

★

दिगन्त

मुक्ति दो डाक्टर, मुक्ति की अनुमति दो
जनवरी छब्बीस के सुप्रभात काल में
मेरा यह रुग्ण तन, मेरा यह रुग्ण मन, अस्वस्थ कंकाल में—
दौड़ता है अवश
जनता के जुलूस में आकर्षक कौतुकवश,
रास्तों के चौक में
मिलना चाहता हूँ मैं ।
छूट, फुटपाथ पर—
गौरव प्रभात में—
झंडा ले हाथ में—
इच्छा है यह प्रबल
खूब दौड़ूं थल थल,
पर निबल रोग से मैं गया हूँ गल ।

फेंक दूं या दूर करूँ—
नूतन हरित साँप फेंकता ज्यों केंचुल को,
तथा दुग्धस्नात सा चमचमाता शुभ्र तन
केलि करता है ज्यों,
मैं भी क्या इसी प्रकार—
खुल कर खेलूँ इस खुले मैदान,
धरती आकाश में, विद्युत विलास में।

कामना है यह मेरी,
जीवन की नवीन सौदामिनी में—
चमकूं, झुलस जाऊँ जनता के नील व्योम में क्षरण भर,
क्षरण भर,
आहुति शलभ सम —
ढील दूं मैं तन क्रम,
वायु में उड़ूं चरम,
नील व्योम में विरम,
गहरी यह इच्छा है कोई न हो प्रहरी।
पड़े पड़े बिस्तर पर—उठती है उमंग यह—
गंगा के तरंगमय निरभ्र शुभ्र जल में
डूब जाऊँ
विहगों के डैने चीर अतल तल सोपानों से
नाच कर पाताल के प्रवाल लाल घर में
नीली लाल हर रंगी मछली की उमंग सम
और फिर लौट आऊँ पानी के सोपान से
यह मेरी रोग शैया क्षण के लिए भी होती
रूप भरी रसराशि
एशिया के देश देश जागे जीवन अनंत
यही है नवीन मानचित्र अभिलाषा का।
मैसूर के मनोनीत चंदन के अरण्यों से
काश्मीर के वरेण्य हिमहास मार्ग, वन
सिन्ध के निर्जन मरुचारी त्रस्त कारवाँ
इनकी भी दृष्टि में हैं जागते दिगन्त प्राण
पामीर की समभूमि,
मलाया के रबड़ जंगल में

चीन के हरे हरे खेतों के मंगल में
आशा की फसलें नये इन्द्रधनुषी रंगों सी
दृष्टि की तरंगों में खेलती हैं नये खेल
दूसरी आश्चर्य विभा आज मेरी शैया घेर
झरती है चारों ओर
एशिया के कोरों से ।
दिग्वलय चीर कर, फाल्गुनी वात आया
लहराता पुष्प गंध मृदुल मृदु अमंद
छब्बीस का प्रभात लाया
स्पर्श गन्ध मृग मन में जिसका अमंद मृदु
नूतन सुरभिवंध । मुझ रोगी के शयन में ।
बीती है मरीचिका—
औ मरुभरी मारीची सभ्यता भी ।
विहगों के पोत ओत-प्रोत आकाश में
छाते से छा गए नूतन आकाश में
मरुस्थल कारवाँ नूतन दिगन्त से
दीखती है मूर्ति उस उषा की ज्योतिर्मय
नवीनतम पंख से आज बन चित्रपट ।

श्री उदयशंकर भट्ट

जन्म, सन् १८९८, इटावा (उत्तर प्रदेश) में । कवि, नाटककार और उपन्यासकार । प्रमुख रचनाएँ : राका, विसर्जन, मानसी, युगद्वीप, अमृत और विष (कविता-संग्रह) । आकाशवाणी के जयपुर-केन्द्र से सम्बद्ध ।

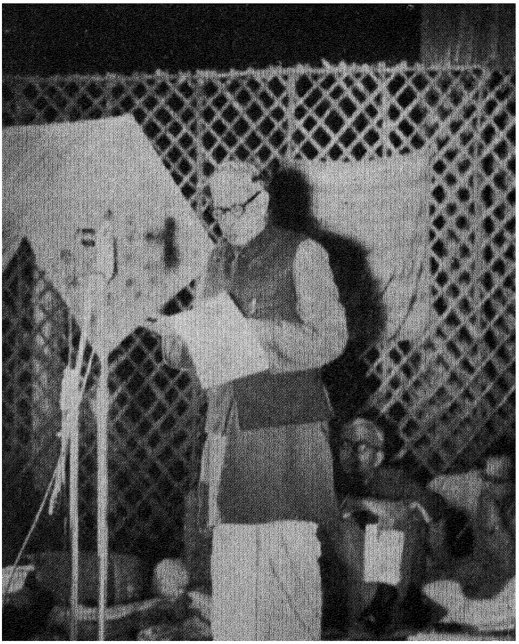

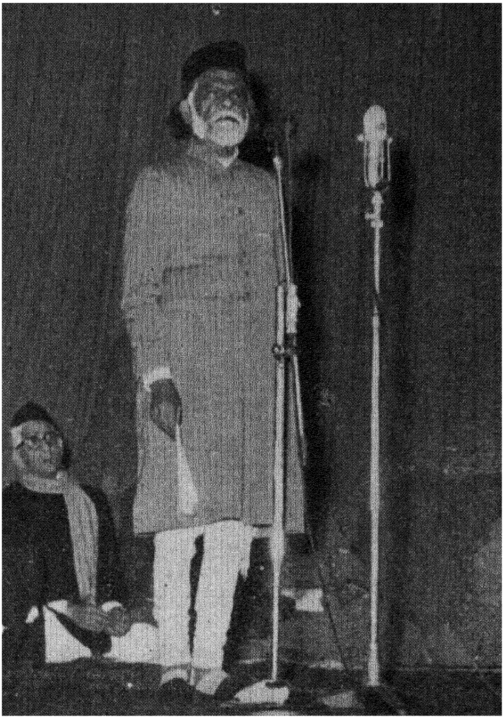

कवि :

श्री जिगर मुरादाबादी

रूपांतरकार :

श्री ओंकारनाथ श्रीवास्तव

जन्म, सन् १८६० । प्रमुख गज़लगो शायर । रचनाएँ : दाग़े-जिगर, शोलये-तूर, आदि । निवास : गोंडा (उत्तर प्रदेश) ।

साक़ी से ख़िताब

कहाँ से बढ़ के पहुँचे हैं कहाँ तक इल्मोफ़न साक़ी
मगर आसूदा इंसाँ का न तन साक़ी न मन साक़ी
सलामत तू तेरा मैख़ाना तेरी अंजुमन साक़ी
मुझे करनी है अब कुछ ख़िदमते दारो रसन साक़ी

रगोपै में कभी सहबा ही सहबा रक्स करती थी
मगर अब ज़िंदगी ही ज़िंदगी है मौजज़न साक़ी
कभी मैं भी था शाहिद दर बग़ल तौबा शिकन मैकश
मगर होना है अब खंजर बकफ़ साग़र शिकन साक़ी
न ला वसवास दिल में जो हैं तेरे देखने वाले
सरे मक़तल भी देखेंगे चमन अन्दर चमन साक़ी
जो दुशमन के लिए भी सर से अपने खेल जाते हैं
दिले ख़ूबाँ में चुभता है उन्हीं का बाँकपन साक़ी
तेरे जोशे रफ़ाक़त का तक़ाज़ा कुछ भी हो लेकिन
तुझे लाज़िम नहीं है तर्के मनसब दफ़्अतन साक़ी
अभी नाक़िस है मैआरे जनूनो नज्मे मयखाना
अभी नामोतबर है तेरे मस्तों का चलन साक़ी
वही इंसाँ जिसे सरताजे मख़लूक़ात होना था
वही ख़ुद सी रहा है अपनी अज़मत का कफ़न साक़ी
लिबासे हुर्रियत के उड़ रहे हैं हर तरफ़ पुर्ज़े
बिसाते आदमीयत है शिकन अन्दर शिकन साक़ी
कहीं मुलहिद न बन जाएँ मेरे अफ़कारे संजीदा
कहीं मुर्तद न हो जाए मेरा ज़ौके सुख़न साक़ी
कहीं ख़ुद हुस्न रह जाए न क़ौमी मिल्कियत बनकर
कहीं ख़ुद इश्क़ हो जाए न महदूदे वतन साक़ी
कहाँ मैं रिंदे सर्गश्ता कहाँ यह दावए तमकीं
समझ ले इस को मेरा एक अन्दाज़े सुख़न साक़ी
अजब क्या है यह बहकी बहकी बातें रंग ले आएँ
बहुत बाहोश रहता है मेरा दीवानापन साक़ी
नमूदे सुब्हे काज़िब ही दलीले सुब्हे सादिक़ है
उफ़क़ से ज़िंदगी की देख वह फूटी किरन साक़ी
बेदह जामे मये बाक़ी के दर जन्नत न ख़्वाही याफ़्त
सवादे साहिले गंगा ओ गुलगश्ते चमन साक़ी।

साक़ी के प्रति

[प्रस्तुत ग़ज़ल में कवि ने साक़ी के प्रतीक को बहुत बड़ा अर्थ-गौरव प्रदान किया है। साधारणतः साक़ी का तात्पर्य मधुबाला से होता है, परन्तु यहाँ कवि ने सृष्टि के परम नियंता की ओर संकेत किया है क्योंकि वही संसार और जीवन को मानव के लिए सुलभ करता है]

कवि कहता है कि आज ज्ञान और कलाओं की इतनी उन्नति हो गई है, परन्तु मानव का तन-मन कुछ भी संतुष्ट नहीं है।

हे साक़ी ! तुझे तेरी मधुशाला और मद्यपों की गोष्ठी मुबारक हो; मुझे तो अब कुछ ऐसे काम करने हैं जिनके कारण मुझे सूली पर भी चढ़ना पड़ सकता है।

मेरी नसों और रगों में कभी शराब ही शराब दौड़ा करती थी, परन्तु अब वहाँ जीवन ही जीवन तरंगित हो रहा है।

कभी मैं भी माशूक़ को बग़ल में लेकर घूमता था, प्रतिज्ञाओं को तोड़ता रहता था, घोर मद्यप था, परन्तु अब मुझे हाथ में तलवार लेनी है और प्यालों को तोड़ने वाला बनना है।

तू संदेह मत कर; जो दृष्टि संपन्न हैं वे वधशाला में भी उपवनों का दर्शन कर लेंगे।

जो शत्रु के भले के लिए भी अपनी जान पर खेल जाते हैं, वे ही प्रेमिकाओं के हृदय का सम्मान भी प्राप्त कर सकते हैं।

मैत्री संबंधों के उल्लास की चाहे तुझसे कुछ भी माँग हो, तेरे लिए यह कदापि उचित नहीं है तू यकायक अपने कर्तव्य से विमुख हो जाए।

अभी तेरी मधुशाला में पीने वालों की लगन त्रुटिपूर्ण है और मधुशाला का ढंग भी ठीक नहीं है और जो पिए हुए हैं उनका आचरण भी अविश्वसनीय है।

जिसे सारी सृष्टि का अवतंस होना था, वही मानव आज स्वयं अपनी मृत्यु की तैयारी कर रहा है।

स्वातन्त्र्य-भावना छिन्न-भिन्न हो गई है और मानवता की चादर पर बेतरह सलवटें पड़ गई हैं।

(ऐसे में) कहीं मेरी गंभीर कल्पनाएँ नास्तिकतापूर्ण न हो जाएँ और मेरी वाणी में अविश्वास न आ जाए (इसका मुझे डर है)।

और कहीं ऐसा न हो जाए कि सौंदर्य केवल किसी राष्ट्र की संपत्ति बन जाए और प्रेम किसी देश विशेष तक ही सीमित रह जाए।

कहाँ मैं अहंकारी मद्यप और कहाँ ये इतनी महान प्रतिज्ञाएँ (अर्थात मेरे मुख से ये बातें विचित्र सी लगती हैं) परन्तु, तू इसे मेरे कथन का एक ढंग समझ।

कोई आश्चर्य नहीं कि मेरी ये बहकी बहकी बातें भी प्रभावशाली सिद्ध हो जाएँ क्योंकि मेरा मतवालापन भी बहुत चैतन्यपूर्ण होता है।

पौ फटने के पूर्व के प्रभात का प्रकट होना स्वयं ही पौ फटने के बाद वाले उज्ज्वल प्रभात के आगमन का प्रमाण है; वह देख क्षितिज से जीवन की किरण फूट रही है।

ऐ साक़ी, जितनी शराब बाक़ी है वह सब मेरे प्याले में ढाल दे क्योंकि गंगा का किनारा और हरे भरे उपवन की चहल पहल का यह वातावरण मुझे स्वर्ग में भी नहीं मिल सकेगा।

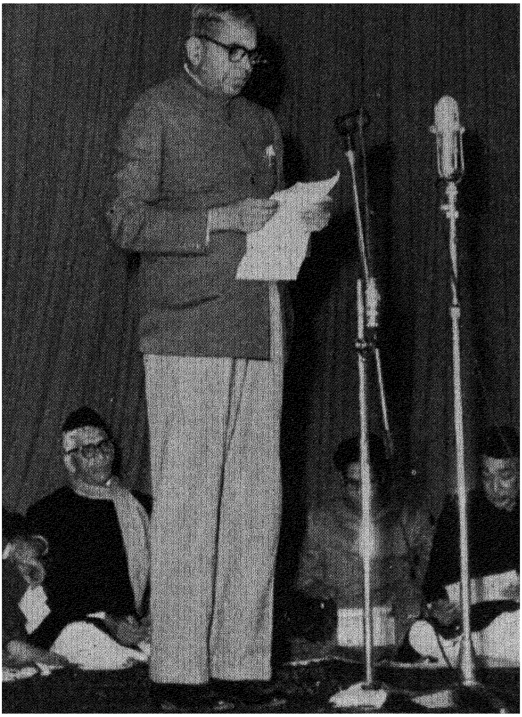

कन्नड

कवि :
श्री विनायक कृष्ण गोकक

रूपान्तरकार :
श्री नरेन्द्र शर्मा

जन्म, सन् १६०६। प्रमुख कवि। रचनाएँ : पयन, समुद्र-गीतगलु, युगान्तर, बाल देगुलडल्ली (कविता-संग्रह)। कर्नाटक कालिज धारवाड़ के प्रिंसिपल।

ध्रुवड सीमे

१

ओर्व वेंगदिखने तानु सुत्तिदसू
ओर्व तंगदिरनेडे कणनेत्ति दरू
वाह्मिहलू कोटि चंद्रर कनसुकंडु
तई भूदेवी
वेठेविहडू कोटिसूर्यर ननसमुंडु
आ महानुभावी।

२

कोटि सूर्यर ननसमुंडु तालेदरु
अनाद्यन्तर रवियोर्वने
अवला सहस्रदल शिरकमल प्राणसखनु
कोटिचंद्रर कनसुकंडु वालिदरू
आगु भोगिरद सोमेन्दु ताने
अवल हृत्पद्मदासनके सम्मुखनु ।

३

ओ ! अनेकानेक नान्यगठीगा सार्व . . .
भौमिक मैवदतच्योत्ति सिद्धियकिर्व
कम्मटवु नम्मेदेश ।
तिलियुत सहोदयरियारिगे तिलिसि विख्याते
याणि मर्यतव्य दिव्यगोलिसलु जगन्नाते
भारतिगे इचिलादेश ।

४

निलद कनसुगकेल्ल नूरुकोटि
ओन्दोन्दु कनसिगोन्दोन्द्र धाटि
कनिसिल्ल ध्रुवदसीमेयंनोन्दे सेरुवन्ते
नेलामुगिलुग बेरेसि ज्ञोपानुवेरुवन्ते
इन्द्रकले मंत्रविद्ययस्नोन्द करुणिसिहलु
नेलदाई भारतिगे उदयवन्नरु णिसहलु ।

५

अल्लवलिदान ओ । आत्मप्रदान
आफलोन्मुखतेगिहृ दिव्ययान
येकु ! अर्घ्यवनेत्तु ! सूर्याभिमुखियु ।
बालु नीनागुत्त नित्यसुखीयु ।
तोसिरलु रविमुकुटवन्नु ऋतप्रज्ञे,
पौर्णिमेये नीगेथव साहसदा समज्ञे ।

निन्नत्ररपिसु, अर्पणठे निन्नमालके
निनगाग कौनिल्लि विश्वगलकाणके ।
अल्ल वलिदान, ओ ! आत्मप्रदान
आ फलोन्मुखतेगिह् दिव्ययान ।

सत्य-सीमा

एक मात्र रवि की परिक्रमा करती धरती बारम्बार,
एक मात्र शशि को ही धरती दृग भर भर कर रही निहार।
पर अनेक शशि स्वप्न-दीप बन पलकों में पलते रहते,
धरती माता के अंतर में कोटिसूर्यप्रभ ज्योतिर्धार।

कोटि सूर्य के सत्य तेज पर पलती रही सदा धरती,
आदि-अंत से परे एक रवि को आत्मस्थ धरा करती,
वही एक दिनमणि चूड़ामणि सहस्रार पर शोभित है,
उस आद्यंतविहीन सूर्य की प्रभा तिमिर-माया हरती।

यद्यपि कोटि चंद्र पृथ्वी का स्वप्न-निवेश सजाते हैं,
पृथ्वी के स्वप्निल पलकों में सोमकलश छलकाते हैं,
पर धरती के कुमुदहृदय पर एक मात्र शशि की शोभा
उदय-अस्त से परे, न जिसको कृष्णपक्ष ढँक पाते हैं।

भारत की यह भूमि विशाला टंकनशाला अकलुष की,
सार्वभौम सर्वस्व, छाप हर मुद्रा पर लगती उसकी,
भिन्न अनेकानेक रूप हैं, जिन पर एक अभिन्न प्रभाव
भारत भू को सहज प्राप्त है दिव्य कला यह अपुरुष की।

धरती के सपने अनगिनती, हर सपने का अपना रूप,
भारत माँ रच रही निरंतर दिव्य स्वर्ग सोपान अनूप।
विश्वजननि द्वारा दीक्षित है भारतभूमि दिव्यकर्मा,
स्वप्न सत्य का शिखर छू रहे, उतरी नई भोर की धूप।

बलि की भूखी नहीं सफलता, आत्मसमर्पण ही साधन,
उठो, अर्घ्य दो सूर्योन्मुख हो, जीवन सफल, सुफल लोचन।
सत्यकेतु चैतन्य सूर्य का मुकुट तुम्हें पहनाएगा,
साहस से भर देगा मानस मनसोजात अमृतवाहन।

बलि की भूखी नहीं साधना, केवल आत्मसमर्पण, दान,
पूर्ण समर्पण से त्रिलोक हो जाएँ हस्तामलक समान।
नहीं, नहीं, बलिदान नहीं, सम्पूर्ण समर्पण आवश्यक,
दिव्य यान की दिव्य दिशा में, साधक, करो दिव्य अभियान।

श्री नरेन्द्र शर्मा

जन्म, सन् १९१३, जहाँगीराबाद (बुलन्दशहर)। प्रमुख कवि, कहानीकार और विचारक। रचनाएँ: शूल-फूल, कर्ण-फूल, प्रवासी के गीत, प्रभात फेरी, कामिनी, पलाशवन, हंसमाला, अग्निशस्य तथा रक्त-चन्दन आदि कविता-संग्रह। आकाशवाणी के बम्बई-केन्द्र से सम्बद्ध।

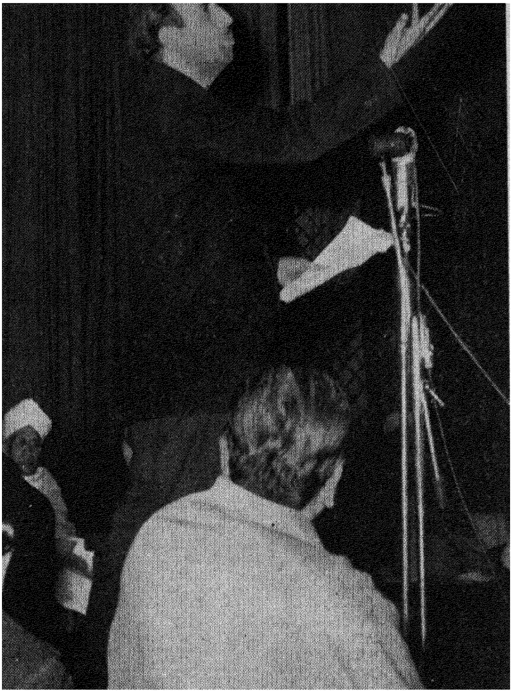

कश्मीरी

कवि :
श्री दीनानाथ कौल 'नादिम'

रूपांतरकार :
डा० हरिवंशराय बच्चन

जन्म, १६१६। जन्मस्थान, श्रीनगर। नई कश्मीरी कविता के प्रवर्तक कवि। मुक्तकों, गीतों, सॉनेटों, गीत-रूपकों के रचयिता। संपादक, कोङ्पोश। कश्मीर कल्चरल कान्फ्रेंस के संस्थापक-सदस्य।

सोन वतन

सोन वतन पोश ह्यु
ताव होत यावुन बहारूक, शालमारुक गोश ह्यु
नवि पोशाकुक बोश ह्यु
सोन वतन लोल सीरन हुंद शिहुल सरपोश ह्यु
याद प्योमुत ग्रोश ह्यु

असि वतन गुलज़ार ह्यू
ज़न बुथिस गिंद-गिंद छु खोतमुत लालनइ वोज़जार ह्यू
असबुनुइ लोकचार ह्यू
न्यंद्रि वुथमुत शार ह्यू
म्योन वतन नवजवानी हुंद वुशुन खुमार ह्यू
बाल पानुक यार ह्यू

असि वतन अछ्गाश ह्यू
कोरि मालिस दजि गंडिथ ज़न पास सोनचइ चाश ह्यू
दोध च्यवन प्रागाश ह्यू
यावनच गिंदबाश ह्यू
गाम मुज़र्यन ज़न मंगिथ ओनमुत छु जिग्रुक क़ाश ह्यू
पूर गछवन्य आश ह्यू

असि वतन रूत गाम ह्यू
थल रूविथ ज़न बोनि शिहलिस ग्रीस्तिस आराम ह्यू
डल दहिस प्यठ शाम ह्यू
आदनुक बादाम ह्यू
त्रैलि ह्यथ ज़न गाम प्यठ यचकॉल्य वोथमुत माम ह्यू
माजि हुंद मोम दाम ह्यू

असि वतन जामवार ह्यू
ओंग्जि पुज़निथ सचनि तल्य कोड टोपगर्यव गुलज़ार ह्यू
रीशमुक शेहजार ह्यू
तोस अंज़िलदार ह्यू
डून हंचि प्यठ तोर्क छॉन्य खोनमुत छु ज़न लोकचार ह्यू
आसनुक अम्मार ह्यू

अस् छि अमिक रॉछदर
अस् जमिक प्रूछक लदाखक ब्ययि छि कॉशिर रूत गबर
अस् छि वतनक रॉछदर
सान्य हिम्मत अथ सिपर

कस छु जूरथ जिंदगी सूत्य मेनि तुयि कुस अनि जिगर
अस् छि वतनुक रॉछदर

ललद्यदि हुंज़ आवाज़ ह्यथ
हुब्ब खोतन्य ललवमुत युस लालि अन्दर सुइ साज़ ह्यथ
जिंदगी हुंद राज़ ह्यथ
अस् छि अज़ नोव साज़ ह्यथ
सोन्त वावुक बोलवुन मयखोश मुदुर अंदाज़ ह्यथ
अस् छि अज़ नुव साज़ ह्यथ

असि छे अज़ रुच् त्राय सूत्य
असि करोरन पनन्यनुइ हुंज़ मीठ मोहबत माय सूत्य
व्यथ छे अज़ गंगाय सूत्य
पोज़ छू सानी राय सूत्य
प्यठ हिमालुक स्नेह बुरुत लव-होत गुहुल असि साय सूत्य
लोल सोद्रच ग्राय सूत्य ।

हमारा वतन

वतन हमारा एक विहँसता फूल है,
वह बहार है जिस पर जोबन आ गया,
शालिमार है जो फूलों से छा गया,
खुशी, कि जो देता तन को ज़ामा नया,
वह कमलों से निकली नई सुगन्ध है,
उसके दिल में प्रेम कहानी बन्द है,
यौवन की वह पहली प्यारी भूल है।
वतन हमारा एक विहँसता फूल है।

वतन हमारा महकदार गुलज़ार है,
खिलते फूलों के गालों सा लाल है,
बचपन की मुसकानों सा ख़ुशहाल है,
अभी अभी जो फूट पड़ा वह गीत है,
नव जवान के पागल मन की प्रीत है,

वतन हमारा बालपने का यार है।
वतन हमारा महकदार गुलज़ार है।

वतन हमारा है आँखों की रोशनी,
वर खोजी बाबुल का सोने का डला,
ऊषा की नव ज्योति कि यौवन की कला,
गोद लिया बंध्या का बेटा लाडला,

वह आशा जो पूरी होने को बनी।
वतन हमारा है आँखों की रोशनी।

वतन हमारा एक सुनहरा गाँव है,
थके मुसाफ़िर को चिनार की छाँव है,
डल के तट पर उतरी सुन्दर शाम है,
फला पेड़ पर वह पहला बादाम है,
फल मेवों की टोकरियाँ लाने वाले,
मामाजी के आने का पैग़ाम है,

माँ के आँचल में ममता का भाव है।
वतन हमारा एक सुनहरा गाँव है।

वतन हमारा जैसे जामावार है,
चतुर सुई से कढ़ी केसरी क्यारियाँ,
कोमल जैसे हों रेशम की सारियाँ,
तूश कि जिसपर लगी रुपहली धारियाँ,
खुदी लकड़ियों पर बचपन की मूरतें,
हुई न जिनके मन की, ऐसी सूरतें,

वतन हमारा इन सबका आकार है।
वतन हमारा जैसे जामावार है।

हम अपनी धरती के पहरेदार हैं,
जम्मू, पुंछ, लद्दाख और कश्मीर के,
हम जो कहलाते हैं बेटे वीर के,
ढाल हमारी हिम्मत, बल तलवार है,
नहीं कभी ख़म होती जिसकी धार है,
कहीं ज़िन्दगी ने भी मानी हार है,
इसके मुँह लगना बिलकुल बेकार है,
हम सब लड़ने मरने को तैयार हैं।
हम अपनी धरती के पहरेदार हैं।

शब्द लल्ल के साथ हमारे आज हैं,
हब्बा ख़ातूँ की छाती की तान भी,
जीवन का जो भेद बताए, ज्ञान भी,
नए हमारे कंठस्थल में राग हैं,
नई बहारों से लहराते बाग़ हैं,
हाथ हमारे आज नए ही साज़ हैं।
शब्द लल्ल के साथ हमारे आज हैं।

एक नया आदर्श हमारे पास है,
हमने भारत भर का पाया प्यार है,
मिली वितस्ता से गंगा की धार है,
सत्य और संकल्प हमारा एक है,
हिमगिरि के घन तुहिन कणों की छाँव में
आज हमारी मिट्टी का अभिषेक है।
आज प्रेम के सागर में उल्लास है।
एक नया आदर्श हमारे पास है।

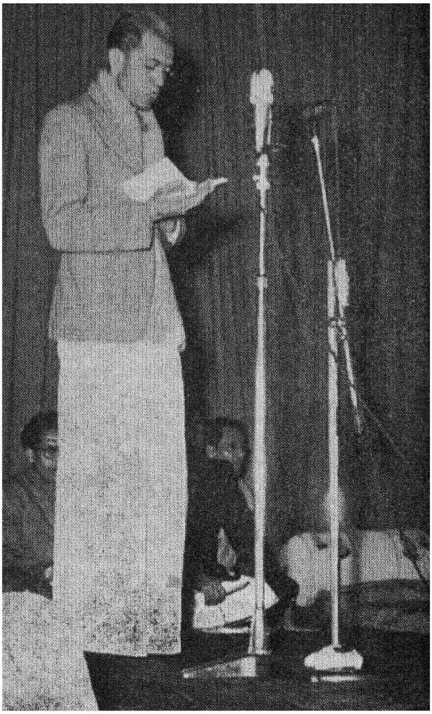

कवि :

श्री सुन्दरम्

रूपांतरकार :

श्री भगवतीचरण वर्मा

जन्म, सन् १९०८। पूरा नाम त्रिभुवनदास लुहार। प्रमुख कवि। रचनाएँ : कोमा भगतनी कडवी वाणी, वसुधा तथा यात्रा, (कविता-संग्रह)। आजकल अरविन्द आश्रम पांडिचेरी में रहते हैं।

घण उठाव !

घणुंक घणुंक भांगवू घण उठाव मारा भुजा !
घणुंक घणुं तोडूवें, तुं फटकार घा, ओ भुजा !

अनंत थर मानवी हृदय चित्तकारिये चड्या
जड़त्व पण जीर्णनांतू धड़ धड़ा बी दे घाव त्यां

धरा घणघणे भले, थरथरे दिशा, त्योभ भाँ
प्रकंप प्रथराय छो, उरउरे उठे भीतिनो
भयानक उछाल छो, जगत जाव डूलि भले,
पछाड़ घण, ओ भुजा धमधमा व सृष्टी बधी !

अशे, युगयुगादिनापड़ परे, पड़ो जे चड्याँ,
लगाव, घण ! धा, भूटो तड़तड़ाट पाताल सौ,
धरा उर दटाई मूर्छित प्रचंड ज्वालावली
बहिर्गतबनी रहो, विलसि रौद्र फूत्कार थी ।

तोड़ी फोड़ी पुराणो ताबी ताबी तूटेलू,
टीपी टीपी वधू ते अवलनवल त्याँ आवी घाट एने,
झाँकी रहे था, भुजा हे, लई घण, जगने धा थकी घाट देने !

नाश और निर्माण

इस जग में ऐसा बहुत कि जो तोड़ा जाए
तू थाम हथौड़ा ऐ मेरी बलवती भुजा !

क्षत-विक्षत करने को है यह सब सड़ा गला
तू इसे ध्वस्त कर, ऐ मेरी बलवती भुजा !

इस मानव के उर के ऊपर
इसके कर्मों पर औ मन पर
हैं युगों युगों के जीर्ण जड़ों
के जमे हुए अनगिनती स्तर
उन सब पर हो आघात प्रबल नवजीवन का
अपना प्रहार कर, ऐ मेरी बलवती भुजा !

चाहे थर्राएँ दसों दिशा
या डगमग डोले धरा अचल
कम्पायमान हो नभमंडल
प्रत्येक हृदय में आन्दोलित
हो उठे दैत्य सा भीषणमय
हो जाय नष्ट संसार सकल
हिल जाय सृष्टि, ऐसा हो तेरा वार कड़ा
निष्क्रिय तू मत बन, ऐ मेरी बलवती भुजा !

यह त्रस्त और विक्षुब्ध जगत,
जम रहीं तहों पर तहें जहाँ,
युग युग के मलिन विकारों की,
वे एक बार हो जायँ ध्वस्त,
वे अन्ध गर्त, पाताल सृष्टि
के टूट जायँ भीषण रव बन...
औ व्यथित धरा के अन्तर की
मूर्छित सी शत शत ज्वालाएँ
शत शत लपटों में फूट पड़ें
कर उठें यहाँ तांडव-नर्तन
सज जायँ प्रलय के साज गाज बन जायँ आज
तेरी चोटें उन्मत्त, अरी बलवती भुजा !

तू तोड़ निरन्तर तोड़ अरे
जो कुछ भी यहाँ पुरातन है
तू उसे जला दे जो कि यहाँ
टूटा फूटा है, जर्जर है
पर करना है निर्माण नया
भरना है पावन प्राण नया
तेरा प्रहार दुनिया को दे आकार नया
तू थाम हथौड़ा, ऐ मेरी बलवती भुजा ।

कवि :
योगी शुद्धानंद भारती

रूपान्तरकार :
श्री इलाचन्द्र जोशी

प्रमुख कवि, बहुभाषाविज्ञ और विचारक विद्वान। रचनाएँ : भारतशक्ति नामक बृहत्काव्य एवं अन्य लगभग सौ गद्य-ग्रंथ। निवास, पांडिचेरी।

चिंकनातम् जेहिन्त

चिंकनात गर्जनै चेय्ते-जेजे
जेहिन्तेन्न वीररमुन् चेल्वोम्
चंकनातपेरि कोट्टिये—हे हे
चत्तियच्चमरै वेल्लुवोम्- जेहिन्त जेहिन्त

कोडिकोडि वीरर नाडिते तर्मचक्र
क्कोडि परक्कुम् कोट्रनाडिते तेय्वम्
आडुकिन्र अगर नाडिते-अन्पुम्
अखिलुम् पांकुम् अमुत नाडिते-जेहिन्त
मुत्तिरैत्तु मुप्पुरम् कडल-वेट्रि
मुरचु कोट्टुम् अरचु नम्मते
चत्तमिट्टरुवि यालोलि—ओम् ओम्
चान्ति एन्नुम् कान्ति नाडिते-जेहिन्त

तेनुम् पालुम् तींकनिकलुम्-नालुम्
चेकित्तु क्कोट्टुम् चेल्व नाडिते
मानुम मयिलुम् कुयिलिनंकलुम्-मातर
वडिवै वकण्डु मयंकु नाडिते-जेहिन्त

कोल्लुंकुंडुं कुलिन्र्तु पोकुमे-वेय्य
कोपप्पुयलुं अमैतियाकुमे
कल्लिन् मनमुग करैन्तुरुकुगे एंकल
कण्णन् पुत्तन् चोल्लुग् चोल्लिले जेहिन्त

तिडुतिडुक्कुम् अणुवेडिच्चमर-चेययुम्
तीयर इंकु तीण्डलाकुमो ? अवर
नडुनडुंकि प्पकैयोडुंकवे-आत्म
ज्ञान चवित वेल्लम् पोंकुमे-जेहिन्त

नेरुजीयिन् पंच चीलमुम्-पूविल्
निकरिल्लान कान्तियुल्लमुम्-पुत्तर
कोरुकिन्र अष्ट चीलमुम्-कोण्डु
कुवलयत्तिल अमैति नाट्टुवोम्-जेहिन्त

पारतक्कुडियूरचिले इनि
प्पंचमिल्लै ! पयमुम् इल्लैये
चूरियनै प्पुयलणैक्कुमो-वीर
चुतन्तरत्ते प्पकै केडुक्कुमो-जेहिन्त

नाट्टुयिर नमतु नल्लुयिर-ताय्
नाट्टुनन्मै नमतु नन्मैये
नाट्टुच्चेल्बम् वीट्टुच्चेल्वमे-इंकु
नामिलातु यारुम् इल्लैये-जेहिन्त

वट्टनान्कुडै निकलिले इके
वडक्कु, तेक्कु, किलक्कु मेक्कुडन्
ओट्टुरवु कूडि वालुवोम्-एन्रुम्
ओन्रुलकु ओन्रुमान्तरे-जेहिन्त !

जय मातृ भूमि

जय जय जय मातृभूमि !
जय जय जय हिंद ।

सिहनाद सदृश करें
वीर-गर्जना ।
शंख बजे मंगलमय
दुंदुभी-निनाद अभय
सत्य-युद्ध-धीर करें
विजय-साधना
सिहनाद सदृश करें
वीर-गर्जना ।

कोटि-कोटि वीरव्रती
धर्म चक्र-ध्वजा धृती

दिव्य-प्रेम-प्लावन में
हो रहे विभोर
याम याम पहर पहर
सिंधु उठे लहर लहर
हहर-हहर छहर-छहर
नाचे निशि भोर
अर्पण कर मुक्ताकण
करें अर्चना
सिंहनाद सदृश करें
वीर-गर्जना।

गांधी की अमर भूमि
नदी बही चरण चूम
गाती नित झूम झूम
शांति ! ओम् शांति !
अमृत मधुर प्यार बहे
फल-रस की धार बहे
पिक मयूर मृग विमुग्ध
देख अमल कांति
कृष्ण बुद्ध अमर-बोल
प्राणों में सुधा घोल
शांत करें युद्ध रोल
भीति करें छीन
अणु बम की भीम ज्वाल
आसुरि हिंसा कराल
आत्म ज्योति-प्लवन बीच
हो रही विलीन
शमित हुई ध्वंस-वृत्ति
हिंस्र तर्जना।
सिंहनाद सदृश करें
वीर गर्जना।

राष्ट्र पंचशील-निष्ठ
गांधी-गरिमा-गरिष्ठ
बुद्ध-ज्ञान से वरिष्ठ
प्रेम-पथ-पला
हरे भ्रांति हरे त्रास
करे मोहपाश नाश
शांति-गीत गूँज उठे
विश्व-मंगला
विपुल विश्व का प्रसार
भारत पर है निसार
जग का यह एक नीड़
विश्व-भारती
मानव का मिलित रूप
इसमें बिम्बित अनूप
जन-मन नित प्रेम-मगन
करे आरती
अग-जग में करे सतत
शांति-सर्जना
सिंहनाद सदृश करें
वीर गर्जना।

नहीं दैन्य नहीं भीति
भारत में बहे प्रीति
मुक्त प्राण युक्त हृदय
बढ़ें वीर-वृंद
जीवन में अमृत सींच
आँधी तूफ़ान बीच
अमर ज्योति स्फुरित किए
गावें जय हिन्द
जय जय जय मातृभूमि

जय जय जय हिंद
एक देश एक प्राण
एक योजना
सिंहनाद सदृश करें
वीर गर्जना ।

श्री इलाचन्द्र जोशी

जन्म, सन् १९०२ । प्रसिद्ध उपन्यासकार तथा आलोचक । प्रमुख रचनाएँ : विजनवती (कविता-संग्रह), लज्जा, सन्यासी, पर्दे की रानी, प्रेत और छाया, निर्वासित, सुबह के भूले, जिप्सी, जहाज़ का पंछी (उपन्यास) ; विवेचना, साहित्य-सर्जना (आलोचना); प्रयाग के 'संगम' और बम्बई के 'धर्मयुग' का संपादन कर चुके हैं। संप्रति आकाशवाणी के दिल्ली-केन्द्र से सम्बद्ध ।

तेलुगु

कवि :
श्री जी० जाषुआ

रूपान्तरकार :
श्री हंसकुमार तिवारी

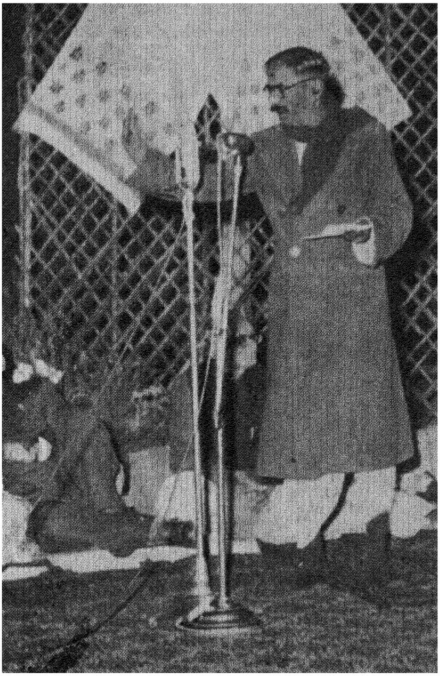

जन्म, सन् १८९५। प्रमुख कवि। रचनाएँ : फ़िरदौसी (प्रबन्ध-काव्य), गब्बिलमु, मुमताज। आकाशवाणी के मद्रास-केन्द्र से सम्बद्ध।

रत्नाञ्जलि

: १ :

स्वातंत्र्य वीर बीजमुलु नाटिना नाटि
शूर सैनिक बाहु सारमुनकु ।।
घोराहकमुना झाँसी राणी चिन्दिन ।
प्रति लेनि नुलिवेडी रक्तमुनकु ।

गुजरातु मुनि पादरज मंदाकिनि
शांत्यहिंसा नयस्तम्भमुलकु
देश नायकुल शक्तिस्फार रच्छित
प्राज्य स्वतंत्र साम्राज्य मुनकु
पोरति कुनि वत्सु सद्भक्ति पुष्परसमु
दिव्य मणिमय हृदय पात्रिकल निंचि
अर्घ्यमिड्चुन्न दीयरुणारुणार्द्र
रागरंजित प्रभात रम्यलक्ष्मी ।

: २ :

समशीतोष्ण सुखाभिरामयु
अहिंसाधर्म सिद्धांतवन्तमु
नानाविध रत्नरंजित
समुद्रप्रावृतंद स्मदीय
महाभारत खंडराजमु
कुलव्याणोग्र पूतकार धूममु
नामूलमुग नापांगि
सुख सम्पच्छान्तु लंनिमगुणि ।

: ३ :

खादीर टनपु विन्ततुम्यदलु
झंकरींचे नीइंटिलो
नीद्ररिद्रयमु गोचिपातवाले
वन्येन गाँधी वैरागी बालादिच्या प्रभतो स्वतंत्रमनु
संध्यालक्ष्मीतो तेच्य, मेणेदी तुल्यटि मंदाहारामुला,
मम्मीछिम्प हिंदूरमा ।

रत्नाञ्जलि

जिन हाथों ने युगों युगों तक,
अपनी सारी अतुल शक्ति से,
आज़ादी के बिरवे रोंपे,
अपने मन की परम भक्ति से,

जिस लक्ष्मी बाई ने सींचा,
उष्ण रक्त पौधों पर अपना,
जिसके बल पर उगते पौधे,
देख सके आगे का सपना।

जिसकी शुभ्रज्योति को छूकर
तिमिरपुंज हिंसा के भागे,
शांति स्नेह के जयस्तम्भ,
जिसकी पदरज को छूकर जागे,

वह गुजरात संत औ उसके,
वे अनंत, जागृत अनुयायी
जिनकी कुशल सतर्क बुद्धि ने
मूर्ति देश की नयी बनायी।

आज प्रभाते, वीणाहाते,
हृदय-पात्र में मधुरस भर कर,
उषा लक्ष्मी अर्घ्य ढालती है,
उनके महान चरणों पर।

भेद-विभेद-ख्याल-विष जिसका,
क्षीण हो गया, क्षीण हो रहा,
हाँ, आसिंधु हिमाचल चलकर
जो समता के बीज बो रहा,

समशीतोष्ण, सुखाभिराम
करुणा-उदार, सिद्धांतवंत जो,
नानाविध रत्नंजित, सागर- प्रावृत
अपना भरतखंड सो,

हे भारत स्वातंत्र्य लक्ष्मी
सब दारिद्र्य तुम्हारे घर का,
जो हर कर ले गया,
दे गया तुम्हें सलौना,
प्यारा चरखा।

उस चरखे की गूँज
गुँजाती रहे देश का कोना कोना।
स्वर्ण अतीत आज हो कर्मठ
हो निःशेष भाग्य का रोना।

श्री हंसकुमार तिवारी

जन्म, सन् १९१८, मानभूमि, बंगाल। गीतकार कवि। प्रमुख रचनाएँ: रिमझिम, नवीना, तथा अनागत (कविता संग्रह)। मानसरोवर, गया (बिहार)।

कवि :
श्री मोहनसिंह

रूपांतरकार :
श्री हरिकृष्ण प्रेमी

जन्म, सन् १९०४। प्रमुख कवि और आलोचक। रचनाएँ : सावे पत्तर, अधवाट, तथा आवाज़ाँ आदि कविता-संग्रह। 'पंजदरिया' के सम्पादक। जालन्धर सिटी, पू० पंजाब।

पंजाबन दा गीत

मैं पंजाब दी कुड़ी
पंज दरयावाँ दी परी
मेरियाँ गोल गोल बाहीं
लस्सी रिड़्क रिड़्क बणियाँ

मेरा पतला पतला लक्क
पींघ झूट झूट बणियाँ
मेरा गोरा गोरा रंग
मक्खण पेड़े खा खा बणियाँ
मेरियाँ साफ साफ अक्खाँ,
खुलियाँ पौणाँ भखभख बणियाँ
पर मैं तेरी ना बणाँ
मुंड्या छड दे मेरी बाँह

भावें मुंडा तूँ जवान
तेरी लोहे वरगी जान
तेरी छिंजाँ विच घुमकार
तेरा परह्याँ विच सतकार
तेरी त्रिजणाँ विच झिणकार
भावें मिलखाँ दा तूँ वाली
तेरी चाँदी जड़ी पँजाली
तेरे हेठ हज़ारी घोड़ा
तेरे पैर ज़री दा जोड़ा
फिर वी तेरी ना बणाँ
मुंड्या छड दे मेरी बाँह

जिस दिन बणें देश ते भीड़
आवण वैरी घत वहीर
जिस दिन पंज दरयाँ दा माण
लग्गे हथ वैरी दे जाण
जिस दा पहिला खून कढ़े
जेहड़ा पहले पूर चढ़े
जेहड़ा सब तों अग्गे लड़े
वे मैं ओस दी बणाँ

वे मैं ओस लई जीयाँ
वे मैं ओस लई मराँ
मैं पंजाब दी कुड़ी
पंज दरयावाँ दी परी

पंजाबिन का गीत

मैं बाला हूँ पंजाब की,
मैं परी पाँच दरयाब की।

मेरी बाहें गोल बनी हैं
लस्सी रिड़क रिड़क कर,
मेरी पतली कमर बनी है
झूलों पर पेंगें भर,
मेरा गोरा रंग बना है
गोरा माखन खा कर,
मेरी उजली उजली आँखें
खुलीं हवाएँ पाकर।

पर मैं न बनूंगी तेरी,
छोरे, छोड़ कलाई मेरी।
मैं बाला हूँ पंजाब की,
मैं परी पाँच दरयाब की।

माना नई जवानी तेरी
लोहे जैसी जान,
हर दंगल में धूम मची है
हर मजमे में मान,
प्रियाजनों की महफिल में भी,
तेरा ही गुणगान।

माना तू है वैभवशाली
तेरी चांदी जड़ी पंजाली,
तेरे पास हजारी घोड़ा,
तेरे पांव ज़री का जोड़ा।

पर मैं न बनूँगी तेरी
छोरे, छोड़ कलाई मेरी।
मैं बाला हूँ पंजाब की,
मैं परी पाँच दरयाब की।

जिस दिन विपदा पड़े देश पर
रिपु-दल बादल-सा घिर आवे,
रिपु के हाथ पंचनद का यश
जिस क्षण संकट में पड़ जावे,

सबसे पहले खौले जिसका
रक्त, नशा रण का चढ़ जावे,
सबसे आगे बढ़ वैरी से
लड़कर अपना बल दिखलावे।

मैं उसकी ही बन पाऊँगी,
मैं उसके ही लिए जियूँगी,
और उसीके लिए मरूँगी।
मैं बाला हूँ पंजाब की,
मैं परी पाँच दरयाब की।

श्री हरिकृष्ण प्रेमी

जन्म, सन् १६०८, गुना (ग्वालियर)। कवि और नाटककार। प्रमुख रचनाएँ : आँखों में, अनन्त के पथ पर, जादूगरनी, अग्नि-गान, प्रतिमा, वन्दना के बोल तथा रूप-दर्शन आदि कविता-संग्रह। आकाशवाणी के जालन्धर-केन्द्र से सम्बद्ध।

कवि :
श्री प्रेमेन्द्र मित्र

रूपान्तरकार :
श्री भवानीप्रसाद मिश्र

जन्म, १६०४, काशी में। प्रमुख कवि और कथाकार। कविता, कहानी, उपन्यास, बाल-साहित्य तथा अनुवाद आदि के लगभग ४० ग्रन्थ अब तक प्रकाशित हो चुके हैं। आजकल आकाशवाणी के कलकत्ता-केन्द्र से सम्बद्ध।

जारा काज करें

आमि कवि जत कामारेर-आर कांसारीर
आर छूतोरेर मुटे मजूरेर
आमि कवि जत इतरेर।

আমি কবি ভাই কর্মের আর ধর্মের
বিলাস বিবশ মর্মের জত স্বপ্নের তরে ভাই
সময় জে হায় নাই ।

মাটী মাঁগে ভাই হলের আঘাত
সাগর মাগিছে হাল,
পাতাল পুরীর বন্দিনী ধাতু
মানুষের লাগি কাঁদিয়া কাটায় কাল,
দুরন্ত নদী সেতু-বন্ধনে বাঁধা জে পড়িতে চায়,
নেহারি আলসে নিখিল মাধুরী
সময় নাই জে হায় ।

মাটীর বাসনা পুরাতে ঘুরাই
কুম্ভকারের চাকা,
আকাশের ডাকে গড়ি আর মেলি
দুঃসাহসের পাখা,
অভ্রংলিহ মিনার-দংভ তুলি
ধরণীর গূঢ় আশার দেখাই উদ্ধত অংগুলি ।

জাফ্রি কাটানো জানালায় বুঝি
পড়ে জ্যোত্স্নার ছায়া,
প্রিয়ার কোলেতে কাঁদে সারংগ
ঘনায় নিশীথ মায়া
দীপহীন ঘরে আধো নিমীলিত-
সে দু' টি আঁখির কোলে
বুঝি দু'টি ফোঁটা অশ্রুজলের
মধুর মিনতি দোলে ।

সে মিনতি রাখি সময় জে হায় নাই
বিশ্বকর্মা জেথায় মত্ত কর্মে হাজার করে
সেথা জে চারণ চাই ।

कामारेर साथे हातुड़ि पिटाइ
छुतारेर धरि तुरपुन,
कान से अजाना नदीपथे भाइ
जोयारेर मुखे टानि गुन।

पाल तुले दिपे कोन से सागरे
जाल फेलि कान दरियाय
कान से पाहाड़े काटि सुड़ंग
काथा अरन्य उच्छेद करि भाइ
कुठार घाय।

सारा दुनियार बोझा बइ आर खोया भांगि
आर खाल काठि भाइ पथ बनाइ,
स्वप्न वासरे विरहिणी बाति मिछे सारा रात्रि
पथचाय,
हाय समय नाइ।

जो जुटे हुए हैं धंधों में

मैं उन सब लोगों का कवि हूँ
जो जुटे हुए हैं धंधों में,
मैंने विलास को नहीं बुना
अपने शब्दों में, छन्दों में।
मैं उनका कवि हूँ, जो लोहे,
लकड़ी, मिट्टी में गड़ते हैं,
मैं उनका कवि हूँ, तरह तरह
की चीजों को जो गढ़ते हैं।
मैं मेहनत और पसीने के स्वर गाता हूँ।
मैं अपने शब्दों को
विलास की मृत्यु नहीं दे पाता हूँ।

धरती व्याकुल है हल की ठोकर खाने को,
सागर की लहरें व्याकुल हाल सम्हाने को
पृथ्वी के भीतर लोहा सोच रहा है यों,
कोई बलशाली खोद-खाद कर
मुझे निकाल न लेता क्यों ?
नदियों की इच्छा है कि कोई
उनकी छाती पर पुल बाँधे,
फिर कैसे मुमकिन है कि क़लम मेरी
केवल शोभा साधे ?
मैं उन सब लोगों का कवि हूँ,
जो जुटे हुये हैं धन्धों में,
मैंने विलास को नहीं बुना,
अपने शब्दों में, छन्दों में ।।

मैं कुंभकार का चाक घुमाता हूँ,
इसलिये कि मिट्टी की इच्छायें पूरी हों,
मैं पंख बनाता हूँ, उनको फैलाता हूँ,
इसलिए कि कम मानव-मानव की दूरी हो ।
मैं अभ्रंकश महलों की ईंटें जोड़ रहा,
मैं तरह-तरह के कर्मों के आनन्द-अखाड़े
गोड़ रहा ।

झिलमिली पड़ी है वातायन पर जहाँ,
झाँक रहा है शीत-किरण-धर जहाँ,
जहाँ पिया का अंक, सँभाले बीन,
गीत आँसुओं के झरता है दीन,
उस दीपहीन ग़मगीन कक्ष में हाय,
मुझ कर्म-व्यस्त के स्वर की जाय बलाय ।

मैं वहाँ, जहाँ शत-लक्ष भुजायें व्यस्त,
मैं वहाँ जहाँ मानवता मेरी त्रस्त,
मैं उन सब लोगों का कवि हूँ,
जो जुटे हुए हैं धन्धों में,
मैंने विलास को नहीं बुना,
अपने शब्दों में, छन्दों में ।

मैं लुहार का घन हूँ चोट लगाता हूँ,
मैं सुतार का बरमा, छेद गिराता हूँ,
मैं समुद्र में साध रहा हूँ हाल,
मैं प्रलय-वात में खोल चुका हूँ पाल।

मुझको जाना है सात-समुंदर पार,
मैं छोड़ नहीं सकता अपनी पतवार,
मैं अगम्य पर्वत की बना सुरंग,
मैं घने जंगलों का हूँ परशु-प्रसंग।

मैं तरह तरह के करता हूँ धन्धे,
इसलिये कि जग का बोझ सँभाले हैं
मेरे कन्धे।
मैं लम्बी गहरी नहरें काट रहा,
मैं देश-विदेशों खाई पाट रहा।

झिलमिली पड़ी वातायन का चंदा,
मैं कैसे देखूं, बुला रहा धन्धा।
मैं क्षमा चाहता हूँ भाई प्रेमी—
मैं अलग नियम का बना आज नेमी।

मैं उन सब लोगों का कवि हूँ,
जो जुटे हुए हैं धन्धों में,
मैं बुन न सकूँगा बात तुम्हारी,
इन शब्दों, इन छन्दों में।

कवि :
श्री बी० बी० बोरकर

रूपांतरकार :
श्री गिरिजाकुमार माथुर

प्रमुख कवि और कथाकार। रचनाएँ : जीवन-संगीत, दूध-सागर, आनन्द भैरवी, भावीण। आकाशवाणी के पूना-केन्द्र से संबद्ध।

दिव्यत्वाची प्रतीती

तथें कर माझें जुलती
दिव्यत्वाची जेंथ प्रतीती
हृन्मंदिरिं संसृतिशरस्वागत
हँसतचि करिती कुटुंबहितरत
गृहस्थ जे हरि उरांत रिझवित

सदनीं फुलबागा रचिती
तेंथें कर माझे जुलती

ज्या प्रबला निज भावबलानें
करिती सदनें हरिहरभुवनें
देव - पतींना वाहुनि सु-मनें
पाजुनि केशव बाढविती
तेंथें कर माझे जुलती

गालुनियाँ भालीचे मोती
हरीकृपेंचें मळे उगविती
जलदाँपरि येउनियाँ जाती
जग ज्याँची न करी गणती
तेंथें कर माझे जुलती

शिरीं कुणाच्या कुवचनवृष्टी
वरिती कुण अव्याहत लाठी
धरिनी कुण घाणीची पाटी
जे नरवर अितरांसाठीं
तेंथें कर माझे जुलती

यज्ञीं ज्याँनी देउनि निजशिर
घडिलें मानवतेंचें मंदिर
परी जयांच्या दहनभूमिवर
नाहिं चिरा नाहीं पणती
तेंथें कर माझे जुलती

स्मितें ज्यांचीं चैतन्यफुलें
शब्द ज्यांचे नवदीप-कलें
कृतींत ज्यांच्या भविष्य उजले
प्रेम विवेकी जे खुलती
तेंथें कर माझे जुलती

जियें विपत्ती जाली, उजली
निसर्गलीला निली काजली
कथुनि कायसें कालिज निखली
ग्रेंकाची सगली बसती
तेंथें कर माझें जुलती

मध्यरात्रि नभघुमटाखालीं
शांतिशिरीं तम चव-या ढाली
त्यक्त बहिष्कृत मी ज्या कालीं
ग्रेकांतीं डोलें भरती
तेंथें कर माझें जुलती

दिव्य के दर्शन

होती जहाँ प्रतीति दिव्य की
मैं प्रणाम सा झुक जाता हूँ

जो हँसकर सहते जग के शर
प्रियजन के हित में रत रहकर
फूल बाग़ से जिनके घर पर
स्वयं रीझ जाता है ईश्वर

साधारण गृहस्थ जन के प्रति
मैं प्रणाम सा झुक जाता हूँ

भावमयी गृहिणी सबलाएँ
मिट मिट कर जो स्वर्ग बसाएँ
फूल पाँखुरी सी ग्रर्पित हो
जुग जुग कान्हा गोद खिलाएँ

उन माता ममताग्रों के प्रति
मैं प्रणाम सा झुक जाता हूँ

जिस माथे पर मोती सा श्रम
झलमल हो, ज्यों अनझर शबनम
देव कृपा सी फसल उगाकर
मिटते, ज्यों उड़ते बादल नम

उन अनाम आत्माओं के प्रति
मैं प्रणाम सा झुक जाता हूँ

औरों के दुख बलिदानों को
कुत्सा, लांछन, अपमानों को
अपने सिर माथे लेते हैं
जो कलंक-तिलकित बाणों को

उन नर-देवों के चरित्र पर
मैं प्रणाम सा झुक जाता हूँ।

शीश होम देकर जो अपना
करते मानव-मंदिर रचना
जिनकी दहन-भूमि पर अंकित
चिन्ह न कोई, जले न दियना

मानवता निर्माता के प्रति
मैं प्रणाम सा झुक जाता हूँ

स्मित में फूल-चेतना खिलते
शब्दों में दीपक से जलते
जिनकी हर कृति में भविष्य के
नए क्षितिज हर रोज उजलते

प्रेम-विवेकमयी गरिमा पर
मैं प्रणाम सा झुक जाता हूँ

जल कर उजले विपति नुकीली
है विराट छवि साँवर नीली
उठती एक गूँज अंतर में
अक्षय लीला देख रँगीली

व्यापक रमते एक तत्व पर
मैं प्रणाम सा झुक जाता हूँ

डोल रहे नभ गुम्बद के तल
तम का चँवर शांति पर प्रतिपल
त्यक्त, बहिष्कृत सा होता मैं
आँखों में भरता आँसू जल

उस एकांत शांत बेला में,
मैं प्रणाम सा झुक जाता हूँ।

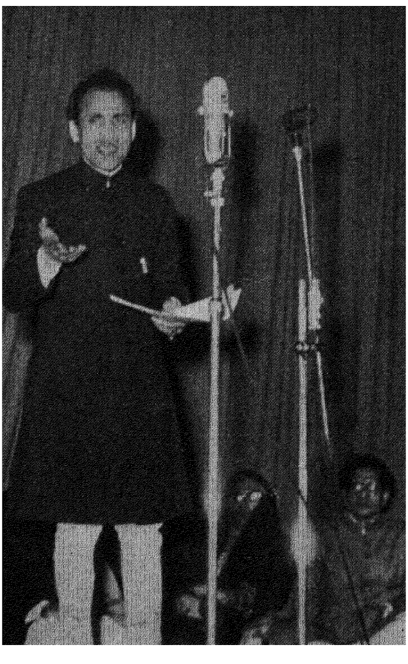

श्री गिरिजाकुमार माथुर

जन्म सन् १९१९, अशोकनगर, ग्वालियर। नई हिंदी कविता के प्रमुख कवि। रचनाएँ : मंजीर, नाश और निर्माण, तथा धूप के धान, (कविता-संग्रह)। आकाशवाणी, भोपाल से सम्बद्ध।

मलयालम

कवि :
श्री जी० शंकर कुरुप्प

रूपांतरकार :
डा० हरिवंशराय बच्चन

जन्म, सन् १६००, उत्तर त्रावणकोर में। रचनाएँ : सौन्दर्य-पूजा, तथा वसन्तोत्सव (कविता संग्रह)। आकाशवाणी के त्रिवेन्द्रम्-केन्द्र से सम्बद्ध।

सागर-गीतम्

: १ :

श्रान्तमंबरं निदाघोष्मलस्वप्नाक्रान्तं
तान्तमारब्धक्लेशरोमन्धं मम स्वान्तं

दृप्तसागर ! भवद्रूपदर्शनालर्ध
सुप्तमेत्रात्मावन्तर्लोचनं तुरक्कुन्नू

·नीयपारतयुटे नीलगंभीरोदार--
च्छाय, निन्नाश्लेषत्तालेन्मनं कुलिर्क्कुनु-

क्षुद्रमामेन् कर्न्नत्ताल् केल्क्कुवानाकात्तोरु
भद्र नित्यतयुटे मोहन गानालापाल्

उद्र संफणोल्लोल कल्लोलजालं पोक्कि
रौद्रभंगियिलाटि निन्निटुं भुजंगमे !

वानं तन् विशालमा श्यामवक्षस्सिल् कोत्ते--
ट्टनान्द मूर्च्छाधीनमंगने निल कोलवू

तत्तुकेन्नात्माविकल् !--
कोत्तुकेन् हृदन्तत्तिल्
उत्तुंगफणाग्रत्तिल्
एन्नेयुं वहिच्चालुं !

: २ :

नीरद लता गृहं पूकियिप्पोङ्गुतन्ति
नीरवभिरिक्कुन्नु रागविभ्रममेन्ति

हृदयं द्रविप्पिक्कुमेतोरुज्वलगानं
उदयल्लयं भवानालपिक्कुन्नू स्वैरं ?

कनकनिचोलमून्नीनिग्नोरस्साय् मेवुं
अनवद्ययां सन्ध्यादेवितन् कपोलत्तिल्

क्षणमुंटोलिक्काराय् मिन्नुन्नु ताराबाष्प
कणमोन्नतिवाच्य नव्यनिर्वृतिबिन्दु !

अंगिल् निन्नरिञु ञान् पूर्णामामात्माविकल्
तिंगिटु मनुभवं पकरुं कलाशैलि

नित्यगायक ! पटिप्पिक्कुकेन् हृत्स्पन्दत्ते--
स्सत्य जीविताखंड गीतत्तिन् तालक्रमं !

जीवितं गानं, कालं
तालमात्माविन् नाना—
भावमोरोरो रागं
विश्वमंडलं लयं !

: ३ :

अम्पिलिच्चषकत्तिल् नुरयुं दिव्यानंदं
अम्पिलेन्तिक्कोंटेत्ति शुक्लपंचमि मंदं

आनतमुखियुटे नीलभ्रू निड़लिच्च
पानभाजनं, वेम्पुं करत्ताल् वयं वांगि

फेनमंजुलस्मितं कलर्न्नु नुकर्न्नेन्य
ज्ञानमेन्नियें पाटुं हर्षजृंभितसत्व,

भावत्ताल् तरंगायमाणमां विरिमार—
त्तावधु तल चाच्चु निल्कुन्नु लज्जामूकं

अल्लणिक्कुड़लितन् श्लथवेरि यिल् निन्नुल्
फुल्लामामोरायिर मुल्लमोट्टु कलिता…

बिंबितं ताराजातमाविल्ल नूनं-निन्टे
कम्पित स्निग्धोरस्सिल् कोंड़ुल्लस्सिक्कुन्नु

कामुक ! मुकरुक,
निन्ने मूटुक, ञाना
प्पूमुटिच्चुरुलिन्नु
सौभाग्यमाशंसिप्पू ।

: ४ :

निद्रयिल् निलीनमायकड़िञ्ञू पारूँ वानुं;
द्रुद्रम ! तनिच्चायिच्चेमञ्ञू नायुं ञानुं,

निन्नुटेयगाधमाभाशयरहस्यत्ते—
योन्नु नी ममात्माविन् कर्णत्तिल् मंत्रिच्चालुं !

धीरमामोरु परिवर्तनोत्साहत्तिन्टे
गौरवं विगुं गानवीचिकलुच्चेडातमन् !

जीवित परिमितियेतुमे सहिक्कात
दैविकास्वास्यं पूण्ट निन्निल् निन्ननुवेलं

स्थितिपालनं नित्यधर्माय् व्याख्यानिक्कुं
क्षितियेस्समुल्कम्पयाक्कुमारुयरुन्नू !

निश्चयं, त्वल् सन्देशं वेपमुण्टाक्कुन्नुण्टु
निश्चल नभश्चरनक्षत्र साम्राज्यत्तिल् ।

क्षोणमामेन्नात्मावु
तकर्न्नालि् तकनर्नोट्टे,
वीणयाक्कुक भव
दाशयं गानं चैवान् !

सागर-गीत

: १ :

उत्तप्त ग्रीष्म के सपनों की छाया में श्रांत खड़ा अंबर,
बीते अवसाद विषादों की सुधियों से शिथिल पड़ा अंतर ।

यह देख कि आगे दर्पभरे सागर की उभरी छाती है,
मेरे अधसोए अंतर की आँखें सहसा खुल जाती हैं ।

हे सिन्धु नील, गंभीरोदर, तुममें असीम की है छाया,
तुमको आलिंगन में भरकर विगलित मानस, पुलकित काया

मानव की सीमित श्रुतियों में जो पड़े नहीं अब तक गाने,
वे मोहन गान असीमित के तुम सुनते रहते मनमाने ।

तुम नर्तन करते हो उनपर फैला शत शत लहरों के फन,
जिनका कल्लोल दिया करता है श्याम गगन को आमंत्रण ।

पर गगन तुम्हारी गोदी में आकर नीरव निस्पंद हुआ,
क्या अपने विषमय दंतों से तुमने उसका वर वक्ष छुआ ?

तुम नाचो मेरे अंतर में,
तुम काटो मेरे अन्तर को,
अपने फैले फन पर बिठला
तुम मुझे उठा दो अंबर को।

: २ :

प्रणयी, मन को हरनेवाले क्या राग सुनाते तुम नीचे,
बादल घर में बैठी सुनती संध्या रानी आँखें मीचे।

क्या देख रही होगी सपने अपने कंचन अवगुंठन में,
क्या जाग पड़ी होंगी सुधियाँ सोई खोई उसके मन में ?

उसको यह ज्ञात नहीं होता, ऐसी लय में तन्मय होती,
कब खिसक पड़ा उर से अंचल, कब ढुलक पड़ा दृग से मोती।

पच्छिम के छज्जों के ऊपर अब नहीं सुनहला बादल है,
तारों में आँसू की बूँदें, तम में आँखों का काजल है।

कुछ ऐसी ही तन्मयता में मैंने भी गीत सुनाया है,
अपनी पीड़ा को स्वर देना तुमने मुझको सिखलाया है।

गायक नायक मेरी छाती की धड़कन को दो ताल वही,
वह जीवन का संगीत जिसे बन्दी कर सकता काल नहीं।

यह जीवन ही वह गायन है
जिसपर देता है ताल समय,
भावों में जिसकी रागिनियाँ,
सारा जग मंडल जिसकी लय।

: ३ :

मृदु मंद चरण नभ पथ पर धर लो, शुक्ल पंचमी आई है,
किरणों के हाथों चाँदी के चन्दा का प्याला लाई है।

है छलक रही उसके अन्दर स्वर्गिक, स्वर्णिम, फेनिल हाला
मत चन्द्र कलंक उसे कहना जो दीख रहा काला-काला।

मधुबाला की श्यामल अलकों, भौहों की यह परछाँई है,
लहरों के हाथ इसे पकड़ो, पीने की बेला आई है।

पीकर जी भर मदिरा फेनिल अधरों से तुम मुसकाते हो,
तुम झूम झूम कर मस्ती में मस्ती का राग उठाते हो।

वक्षस्थल के ऊपर लेटी, लज्जा में डूबी प्राण-प्रिया,
तुम जब जब आहें भरते हो, उठता दबता हर बार हिया।

उसकी लट में गूँथी कलियाँ क्रीड़ा में टूट बिखर झड़तीं
यह कौन समझता है तारक मंडित नभ की छाया पड़ती।

कामुक उन अलकों को चूमो,
बँध जाओ उनके पाशों में,
तुम डाह नहीं, स्वाभाविकता
देखो मेरे उच्छ्वासों में।

: ४ :

निद्रा में डूबी है अवनी, निद्रा में डूबा है अंबर,
जागृति की लहरों पर केवल उतराते हैं हम तुम, सहचर।

अपने अन्तर के जीवन का कुछ भेद मुझे बतलाओगे?
मेरे मानस की श्रुतियों की क्या तुम कुछ प्यास बुझाओगे?

हे चंड हृदय, क्यों जीवन की सीमाएँ तुमसे डरती हैं?
वे स्वर्गिक चाहें कौन तुम्हें बेचैन बनाया करती हैं?

वे बाधाएँ हैं कौन, जिन्हें तुम दूर हटाना चाहोगे?
वे परिवर्तन हैं कौन, जिन्हें तुम जग में लाना चाहोगे?

वह क्रांति-सँदेसे कौन, तुम्हारी तुंग तरंगें लाती हैं,
जिनको सुनकर जड़ रूढ़ि-बँधी धरती विचलित हो जाती है?

निश्चय ही उन संदेशों की ज्वालामय वाणी से डरकर,
निश्चल नभचर नक्षत्रों के साम्राज्य कँपे होंगे थर थर।

इनसे मेरा दुर्बल अन्तर
छनता है तो छन जाने दो,
सागर अपने संदेशों की,
मुझको वंशी बन जाने दो।

हिन्दी

कवि :
श्री बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'

जन्म, १८९७, मयाना गाँव, उज्जैन। प्रमुख राष्ट्रीय तथा दार्शनिक कवि। रचनाएँ : कुंकुम, रश्मि-रेखा, अपलक, क्वासि, ऊर्म्मिला (प्रबन्धकाव्य) और विनोबा-स्तवन। राज्य-सभा के सदस्य। ५, विंडसर प्लेस, नई दिल्ली।

गायन-स्वन भर दो

मन-मन में गायन-स्वन भर दो,
मरु कण-कण को रस निर्झर दो।

: १ :

प्राण-प्रणोदन निम्न-गमन-रत,
जीवन में उत्पीड़न शत-शत,
जड़ उद्धत, चेतन क्षत-विक्षत,
इनको अरुज अनामय कर दो,
मन-मन में गायन स्वन भर दो।

: २ :

खेद-स्वेद से क्लिन्न मनुज-तन,
छिन्न-भिन्न इसका अपनापन,
खिन्न ज्ञान, कुंठित संवेदन,
मृण्मय तृण को चिन्मय कर दो,
मरु कण-कण को रस निर्झर दो।

: ३ :

सम-लय-यति-गति-ताल-राग-रति,
यह जग-जन-जीवन की सद्‌गति,
हुई विकृत, विभ्रमित, अनृत अति,
इसे उदात्त ऋतम्भर स्वर दो,
मन-मन में गायन-स्वन भर दो।

: ४ :

बने असुन्दर, सुन्दर, सन्मय,
क्षिप्त चित्त बन जाए तन्मय,
रजकण तव कर बने हिरण्मय,
यों इस क्षर को पद अक्षर दो,
मरु कण-कण में मधुरस भर दो।

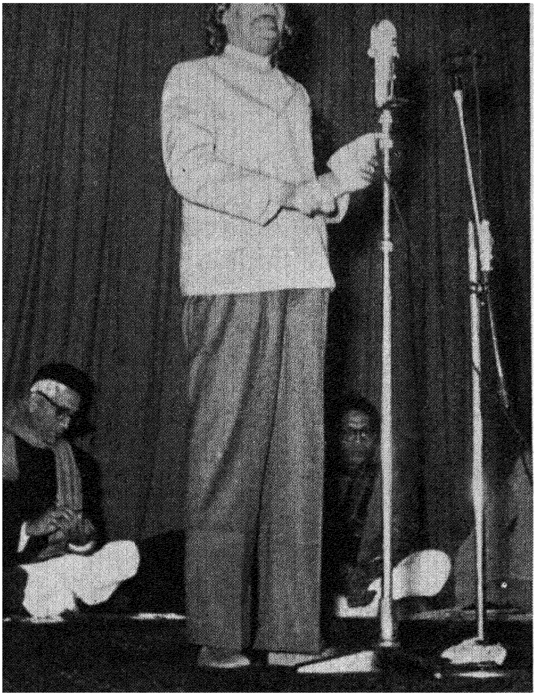

कवि :
श्री सुमित्रानंदन पंत

जन्म १६००, कौसानी, अल्मोड़ा में। छायावाद के प्रमुख प्रवर्तक कवि। रचनाएँ : पल्लव, वीणा, ग्रन्थि, गुञ्जन, ग्राम्या, पल्लविनी, स्वर्ण-धूलि, स्वर्ण-किरण तथा अतिमा आदि कविता-संग्रह। आकाशवाणी के हिन्दी कार्यक्रमों के प्रमुख परामर्शदाता। निवास, इलाहाबाद।

शांति और क्रांति

शांति चाहिए शांति! रजत अवकाश चाहिए
मानव को, मानस वह : महत् प्रकाश चाहिए,
आत्मा वह : हाँ, अन्न, वस्त्र, आवास चाहिए,
देही भी वह : आज मुख्यतः देही वह, क्षण . . .
मनोविलासी, आत्मा बनना है कल उसको!

हाय, अभागा, बुरी तरह से उलझ गया वह
बाहर के अग जग में, बाहर के जीवन में . . .
जहाँ भयानक अंधकार छाया युगांत का !
मानव के भीतर का जग, भीतर का जीवन
आज खोखला, सूना, जीवन्मृत, छाया-सा . . .
गत संस्कारों से चालित, प्रेतों से पीड़ित !!

खाई खंदक में, खोहों में, बीहड़ मग में
भटक गए जन के पग संकट की रेती में !
दलदल में फँस गया मत्त भौतिक युग, गज सा,
अपनी ही गरिमा के दुःसह बोझ से दबा !
जीवन-तृष्णा, चक्की के पाटों सी, उसके
घायल पैरों से है लिपट गई, बेड़ी बन !
धृष्ट, निरंकुश, उच्छृंखल नर, आज शील के
स्वर्णांकुश के प्रति असहिष्णु, अहंता शासित !

सोच रहा मैं, . . . नहीं, स्पष्टतः देख रहा मैं,
महत् युगांतर आज उपस्थित मनुज द्वार पर। . . . .
बदल रहे मानव के भौतिक, कायिक, प्राणिक,
सूक्ष्म मानसिक स्तर, आध्यात्मिक भुवन अगोचर !
बदल रहा, निस्संशय, मानव ईश्वर भी अब,
युग युग से जो परिचालित करता आया नित
मानव जग को, लोक-नियति को, जीवन मन को !
जैवी स्थिति से उच्च भागवत स्थिति तक, संप्रति,
घूम रहा युग परिवर्तन का चक्र अकुंठित।

आज घोर जन-कोलाहल के भीतर भी मैं
सुनता हूँ स्वर शब्दहीन संगीत अतंद्रित . . .
मन के श्रवणों में जो गूँजा करता अविरत !

इस अणु उद्जन के विनाश के दारुण युग में
सृजन निरत हैं सूक्ष्म, सूक्ष्मतर अमर शक्तियाँ
मानव के अंतरतम में, . . . जिनका स्वप्नों का
अक्षय वैभव, अतिक्रम कर युग के यथार्थ को,
अकथित शोभा भुवनों में पल्लवित हो रहा
मानस की अपलक आँखों के सम्मुख प्रतिक्षण !
सूक्ष्म सृजन चल रहा नाश के स्थूल चरण धर ।

कवि कपोल-कल्पना नहीं . . . अनुभूत सत्य यह...
घोर भ्रांतियों के युग का निर्भ्रान्ति सत्य यह...
आरोहण कर रही मनुज-चेतना निरंतर
शिखरों से नव शिखरों पर अब, उठती-गिरती,
संघर्षण करती, कराहती . . . चिर अपराजित !
इसीलिए, मैं शांति क्रांति, संहार-सृजन को,
विजय-पराजय, प्रेम-घृणा, उत्थान-पतन को,
आशा-कुंठा को, युग के सुंदर-कुरूप को
बाहों में हूँ आज समेटे, . . . उन्हें परस्पर
पूरक, एक, अभिन्न मान कर, युग-विवर्त के
क्रन्दन-किलकारों में ध्यानावस्थित रह कर !

विस्मय क्या, यदि बदल रहा आर्थिक, सामाजिक
धार्मिक, वैयक्तिक मानव ? यदि मनुज चेतना
अब सामूहिक, वर्ग हीन बन रही बाह्यतः,
बिखर रहे यदि विगत युगों के मनःसंगठन, . . .
क्या आश्चर्य, बदलता यदि आमूल मनुज जग !

स्वयं, युगों का मानव ईश्वर बदल रहा अब,
निश्चेतन, उपचेतन, अंतश्चेतन के जग
परिवर्तित हो रहे, नए मूल्यों में विकसित !
उन पर आश्रित निखिल सांस्कृतिक सम्बन्धों का

रूपान्तर हो रहा आज, . . . आवर्त शिखर में
घूम, पुनः जो संयोजित हो रहे धरा पर। . . .

विगत निषेधों, रूढ़ि, वर्जनाओं को सहसा
छिन्न-भिन्न कर अपने प्रलयंकर प्रवेग में, . . .
विस्तृत कर जीवन पथ, निःसृत प्राणों का रथ ! ...
नैतिक-आध्यात्मिक अतीत संक्रमण कर रहा . . .
निखर रहे आदर्श लोक, सौन्दर्य तत्व नव !

आज नया मानव ईश्वर अवतरित हो रहा
स्वर्ण रश्मियों से स्मित ऊषाओं के रथ पर,
तड़ित् स्फुरित लतिकाओं में लिपटे पर्वत सा,
अगणित सुर वीणाओं के झंकृत निर्झर सा,
उन्मद भृंगों से गुंजित नव कुसुमाकर सा !

भरते शत सीत्कार आज बाहर गत पतझर
सुलग रहा भीतर नव मधु का स्वर्गिक पावक !
आत्मा के गोपनतम अंतर में प्रवेश कर
मानव मन, हो अधिक पूर्ण, खुल रहा बहिर्मुख !
आज नाश के कर गढ़ रहे नवल मानव को,
नव इंद्रिय वह, विकसित इंद्रिय अति इंद्रिय अब !

बदल रहा अब मानव ईश्वर . . . बदल रहा अब
मानव अंतर, मानवता का रूपान्तर कर !

कवि :
श्री भगवतीचरण वर्मा

जन्म, सन् १६०३, शफ़ीपुर, उन्नाव। प्रमुख कवि, कहानीकार और उपन्यासकार। रचनाएँ : चित्रलेखा, तीन वर्ष, टेढ़े मेढ़े रास्ते, आख़िरी दाँव (उपन्यास); प्रेम-संगीत, मानव तथा मधु-कण (कविता-संग्रह)। आकाशवाणी के लखनऊ-केन्द्र से सम्बद्ध।

समर्पण

अर्पित मेरी भावना ! इसे स्वीकार करो !
तुमने गति का संघर्ष दिया मेरे मन को,
सपनों को छवि के इन्द्रजाल का सम्मोहन,
तुमने आँसू की सृष्टि रची है आँखों में,
अधरों को दी है शुभ्र मधुरिमा की पुलकन !

उल्लास और उच्छ्वास तुम्हारे ही अवयव,
तुमने मरीचिका और तृषा का सृजन किया,
अभिशाप बनाकर तुमने मेरी सत्ता को
मुझको पग पग पर मिटने का वरदान दिया !

मैं हँसा तुम्हारे हँसते से संकेतों पर,
मैं फूट पड़ा लख बंक भृकुटि का संचालन,
अपनी लीलाओं से हे विस्मित और चकित,
अर्पित मेरी भावना इसे स्वीकार करो !

अर्पित है मेरा कर्म इसे स्वीकार करो !
क्या पाप और क्या पुण्य इसे तो तुम जानो,
करना पड़ता है केवल इतना ज्ञात यहाँ !
आकाश तुम्हारा और तुम्हारी ही पृथ्वी
तुममें ही तो इन साँसों का आघात यहाँ !

तुममें निर्बलता और शक्ति इन हाथों की
मैं चला कि चरणों का गुण केवल चलना है,
ये दृश्य रचे, दी वहीं दृष्टि तुमने मुझको,
मैं क्या जानूँ क्या सत्य और क्या छलना है !

रच रच कर करना नष्ट तुम्हारा ही गुण है
तुममें ही तो है कुंठा इन सीमाओं की,
हे निज असफलता और सफलता से प्रेरित
अर्पित है मेरा कर्म इसे स्वीकार करो !

अर्पित मेरा अस्तित्व इसे स्वीकार करो !
रंगों की सुषमा रच मधुऋतु जल जाती है,
सौरभ बिखरा कर फूल धूल बन जाता है,
धरती की प्यास बुझा जाता गल कर बादल,
चट्टानों से टकरा कर निर्झर गाता है !

तुमने ही तो पागलपन का संगीत रचा,
करुणा बन गलना तुमने मुझको सिखलाया,
तुमने ही मुझको यहाँ धूल से ममता दी,
रंगों में जलना मैंने तुमसे ही पाया !

उस ज्ञान और भ्रम में ही तो तुम चेतन हो,
जिनसे मैं बरबस उठता-गिरता रहता हूँ !
निज खंड खंड में हे असीम, तुम हे अखंड
अर्पित मेरा अस्तित्व, इसे स्वीकार करो !

कवि :
डा० हरिवंशराय बच्चन

जन्म, सन् १९०७, प्रयाग। हालावादी कवि के रूप में विख्यात। प्रमुख रचनाएँ : निशा-निमन्त्रण, एकान्त संगीत, मधुशाला, मधुबाला, आकुल अन्तर, मिलन यामिनी, तथा प्रणय-पत्रिका आदि कविता-संग्रह। भारत सरकार के विदेश मंत्रालय में हिन्दी के विशेष पदाधिकारी।

गीत

आज चंचला की बाहों में उलझा दी हैं बाहें मैंने।
डाल प्रलोभन में अपना मन
सरल फिसल नीचे को जाना,
कुछ हिम्मत का काम समझते
पाँव पतन की ओर बढ़ाना,

झुके वहीं जिस थल झुकने में
ऊपर को उठना पड़ता है,
आज चंचला की बाहों में उलझा दी हैं बाहें मैंने ।

काँटों से जो डरनेवाले
मत कलियों से नेह लगाएँ,
घाव नहीं है जिन हाथों में
उनमें किस दिन फूल सुहाए,
नंगी तलवारों के साए
में सुंदरता बिहरण करती,
और किसी ने पाई हो पर कभी नहीं पाई है भय ने ।
आज चंचला की बाहों में उलझा दी हैं बाहें मैंने ।

बिजली से अनुराग जिसे हो
उठकर आसमान को नापे,
आग चले आलिंगन करने
तब क्या आँच धुएँ से काँपे,
साफ़, उजालेवाले, रक्षित
पंथ मरों के कंदर के हैं,
जिन पर ख़तरे जान नहीं था, छोड़ कभी दीं राहें मैंने ।
आज चंचला की बाहों में उलझा दी हैं बाहें मैंने ।

बूँद पड़ी वर्षा की, चूहे
और छछूँदर बिल में भागे,
देख नहीं पाते वे कुछ भी
जड़ पामर प्राणों के आगे,

घन से होड़ लगाने को तन
मोह छोड़ निर्मम अंबर में
वज्र प्रहार सहन करते हैं वैनतेय के पैने डैने।
आज चंचला की बाहों में उलझा दी हैं बाहें मैंने।